केशवसुत

प्रभाकर माचवे

H
891.461 3
K 481 M; 1

केशवसुत के नाम से मराठी काव्य-प्रेमियों के मन में वही भावना जागती है जो तमिळ-भाषियों के लिए सुब्रह्मण्य भारती के, या गुजराती के लिए नर्मद के नाम से जागती है। ये अपनी-अपनी भाषाओं में आधुनिक कविता के अग्रदूत हैं—समकालीन भारतीय साहित्य में महत्त्वपूर्ण दिशा-बोधक चिह्न। उनके जीवन और उनकी रचनाएँ इस बात की उदाहरण हैं कि राष्ट्रीय जागरण की पश्चिम के सांस्कृतिक प्रभावों के प्रति क्या प्रतिक्रिया हुई। यह ठीक ही कहा गया है कि 'केशवसुत ने मराठी कविता के लिए वही किया जो हरी नारायण आपटे ने मराठी उपन्यास के लिए किया—यानी उसे रचनात्मक शक्ति प्रदान की।' सभी अग्रदूतों की भाँति उन्हें भी उम्मीद-वारी और प्रयोगशीलता की अवस्था में से गुज़रना पड़ा। परन्तु जब उन्हें अपनी सच्ची अभिव्यक्ति का माध्यम मिल गया तो उन्होंने मराठी कविता में एक नवयुग का निर्माण किया।

यह पुस्तिका, केशवसुत की शतमांवत्सरिकी के अवसर पर, जो अक्तूबर १९६६ में मनाई गई थी, साहित्य अकादेमी की श्रद्धांजलि है। यद्यपि उन्होंने मराठी में लिखा, फिर भी उनका दाय समस्त भारतीय साहित्य के लिए है।

मूल्य : २·५०

कवर डिज़ाइन : सत्यजित राय
रेखाचित्र : श्यामल सेन

पुस्तक के अन्तःप्रच्छद पर जिस शिल्प का छायाचित्र है, वह उस दृश्य का अंकन है जिसमें तीन ज्योतिषी राजा शुद्धोदन को भगवान् बुद्ध की माता रानी माया के स्वप्न का अर्थ समझा रहे हैं। उनके नीचे एक लेखक उस अर्थ को आलेखित करते बैठा है। यह भारत में शायद लेखन-कला का सबसे पुराना चित्रा-लेख है। नागार्जुन-कोण्डा से प्राप्त, द्वितीय शताब्दी ईस्वी। सौजन्य : नेशनल म्यूज़ियम, नई दिल्ली।

केशवसुत

भारतीय साहित्य के निर्माता

Kesavsut

के श व सु त

Prabhakar Machwe

प्रभाकर माचवे

साहित्य अकादेमी नई दिल्ली

Sahitya Akademi, New Delhi

प्रथम सस्करण : १९६६
द्वितीय संस्करण : १९६७

Library IIAS, Shimla
H 891.461 3 K 481 M: 1
00054716

© साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन
नई दिल्ली से प्राप्य

H
891.4613
K481 M, 1

मूल्य : दो रुपए पचास पैसे

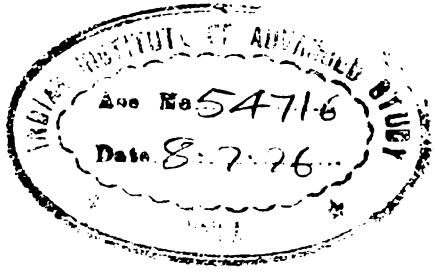

मुद्रक :
राष्ट्रभाषा प्रिण्टर्स, दिल्ली--६

क्रम

१. प्रवेश	७
२. जीवनी	११
३. प्रकृति	२३
४. प्रेम	२८
५. सामाजिक विद्रोह	३३
६. अनुवाद	३९
७. नवीन प्रयोग	४१
८. सामान्य मूल्यांकन	४३
९. चुनी हुई कविताएँ	४७
१०. परिशिष्ट	७१

प्रवेश

मराठी कविता-प्रेमी के मन में केशवसुत के नाम से वही भाव जागता है जो उर्दू-भाषी के लिए हाली, बँगला-भाषी के लिए माइकेल मधुसूदन दत्त, तमिप-भाषी के लिए सुब्रह्मण्य भारती या गुजराती-भाषी के लिए नर्मद के नाम से जागता है। ये सब श्रेष्ठ कवि अपनी-अपनी भाषाओं में आधुनिक कविता के अग्रदूत थे। वे केवल मधुर गीतकार ही नहीं, नई ज़मीन तोड़ने और बनाने वाले थे—न केवल काव्य-भाषा और शैली में, किन्तु पिटी-पिटाई परम्पराओं से मुँह मोड़कर एक नया मार्ग बनाने वालों में भी वे अग्रणी थे। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के सन्धि-काल में भारतीय साहित्येतिहास के ये महत्त्वपूर्ण पथ-चिह्न हैं। पश्चिम के सांस्कृतिक प्रभावों के प्रति राष्ट्रीय जागरण की जो प्रतिक्रिया हुई, उसका उदाहरण इन कवियों का जीवन और काव्य है।

कविता के इतिहास में ऐसे कई महान् कवियों के उदाहरण मिलते हैं, जो जीवन-भर अज्ञात और उपेक्षित रहे, और जिनके बारे में हम बहुत कम जानते हैं। कालिदास का काल अभी तक अनिश्चित है, उमर ख़ैयाम की समूची रुबाइयाँ अभी तक अप्राप्य हैं, होमर कहाँ पैदा हुए थे, इस बात पर सात या नौ नगरों के बीच झगड़ा है। केशवसुत हाल के कवि हैं और फिर भी उनकी जन्म-तिथि के विषय में एकमत्य नहीं है। इस श्रेष्ठ मराठी कवि ने अपने पीछे केवल १३२ कविताएँ छोड़ीं, जो उनकी मृत्यु के बाद पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं।

कवि के नाते केशवसुत के सामान्य मूल्यांकन की दृष्टि से स्वर्गीया श्रीमती कुसुमावती देशपांडे के 'मराठी साहित्य का इतिहास' (साहित्य अकादेमी द्वारा अंग्रेज़ी में शीघ्र प्रकाश्य) से एक उद्धरण देना उपयुक्त होगा :

"केशवसुत ने मराठी कविता के लिए वही उपलब्धि दी जो हरी नारायण आपटे ने मराठी उपन्यास को दी। उसमें एक सच्ची रचना-शक्ति निर्मित की। केशवसुत की आवाज़ प्रतिध्वनियों की दुनिया में एक आवाज़ थी—प्रतिध्वनियाँ सुदूर ध्वनियों की थीं ; देशी और विदेशी दोनों प्रकार की। उन्हें भी उम्मीदवारी और परम्परावाद के कालखंड से गुज़रना पड़ा। लेकिन जब उन्हें अपनी सच्ची व्यंजना-विधा मिली, तो मराठी कविता में एक नवयुग आ गया।

"केशवसुत की प्रारम्भिक कविताएँ नहीं मिलतीं। यह कहा जाता है कि बहुत छोटी उम्र से ही वे पारम्परिक छन्दों में और रूढ़ वर्णनात्मक या उपदेशात्मक शैली में अच्छी पद्य-रचना कर लेते थे। उनकी जो सबसे पहली कविता मिलती है, वह १८८५ में लिखी हुई, 'रघुवंश' के एक अंश का अनुवाद है।...उस समय की उनकी प्रेम-कविता पर संस्कृत के शृंगार-काव्य का प्रभाव स्पष्ट है। उनकी शैली और विम्ब-योजना भी संस्कृत-काव्य और पारम्परिक मराठी कविता की अत्यन्त संस्कृत-बहुल रचना से आकार ग्रहण करती है। संस्कृत-काव्य से प्रभावित होने के कारण उसमें विविध वर्णिक वृत्त और ऐंद्रिक स्थूल विम्ब पाये जाते है।...बाद में, केशवसुत रोज की बोल-चाल के शब्द और मुहावरे साहसपूर्वक व्यवहार में लाते हैं, जो कि उस समय और आज भी रूढ़िवादियों द्वारा कविता के लिए अनुपयुक्त और कर्णकटु माने जाते हैं। अंग्रेज़ी 'ओड' के ढंग पर एक सुगठित, अखण्ड लम्बी रचना के रूप में कविता को गूँथकर श्लोक-बंध को उन्होंने एक नई शक्ति प्रदान की। सबसे बड़ा परिवर्तन जो उनकी कविता में घटित हुआ, वह था आत्मनिष्ठता की उत्प्रेरणा के बारे में।...उनकी कल्पना-शक्ति में एक नया आत्म-विश्वास, काव्य की शक्ति और भूमिका के आग्रह में एक नई शक्ति, उनकी अभिव्यंजना में एक असाधारण प्रामाणिकता है। वस्तुतः उनके साथ एक नया मुक्तक गीति-काव्य जन्म लेता है।

"यह परिवर्तन, कुछ हद तक, अंग्रेज़ी कविता के प्रभाव के कारण घटित हुआ। कुंटे, महाजनी और अन्य कवियों ने मराठी कविता में अनुवादों द्वारा वह नया प्रवाह और प्रभाव शुरू किया था। परन्तु वह ज़मीन में पूरी तरह समोया नहीं गया था। वह अधिकतर अनुवाद या अनमिल अनुकरण के स्तर तक था। केशवसुत ने भी कुछ अंग्रेज़ी कविताओं के अनुवाद किए...इनमें से कुछ भावानुवाद या रूपान्तर हैं, सीधे भाषान्तर नहीं...परन्तु उन्हें जो कुछ अंग्रेज़ी कविता के रूप में मिला, उसके अध्ययन से उनके अपने कविता-विषयक दृष्टिकोण और शैली में भी बड़ा परिवर्तन हो सका।

"उनकी कविताएँ समकालीन मासिक पत्रिका 'काव्य-रत्नावली' में प्रकाशित होती थीं। उन रचनाओं को पढ़कर विजन में किसी दुर्लभ पुष्प को देखने का आनन्द मिलता है। ये कविताएँ व्यक्तिगत अनुभूति में से सहसा फूट निकली हैं—मित्र के घर के दरवाज़े पर ताला देखकर, या प्रियजनों के विरह में कहीं घर की स्मृतियों की अचानक बाढ़ है या कविता के स्वभाव पर कहीं विचार है। प्रकृति के विषय में

एक नई भावना है···प्रकृति का काव्य पक्षियों के कूजन में, वर्षा के संगीत में ऐसे व्यक्त होता है कि उसकी बराबरी किसी भी कवि के शब्द नहीं कर सकते। उसका सौन्दर्य अपनी ताज़गी में चिरन्तन है। यह चेतना और उसमें पूरी तरह खो जाने की इस शक्ति ने केशवसुत की हर कविता में ऐसी मनःस्थिति और वातावरण बहुत ही थोड़ी-सी रेखाओं से निर्मित कर दिया है। ये कविताएँ सीधी वर्णनात्मक नहीं हैं। केशवसुत की सर्वोत्तम कविताओं में प्रकृति के प्रति यह भाव ओत-प्रोत है।··· उनकी सादगी और विचारात्मकता कई बार वर्ड्सवर्थ की याद दिलाती हैं।

"शायद आगरकर के प्रभाव से केशवसुत ने मानव-मात्र की समानता और समाज-सुधार की शीघ्र आवश्यकता को तीव्रता से अनुभव किया। उन्होंने अछूत बच्चे और भूखे मज़दूर के बारे में बड़े ही मार्मिक ढंग से लिखा। उनकी सबसे सशक्त और प्रसिद्ध कविता 'तुतारी' (तुरही) सारी सामाजिक अन्ध-श्रद्धा और जकड़ने वाली कट्टर रूढ़िवादिता से निर्मित आलस्य को तोड़ फेंकने का आवाहन और शंखनाद है। उनके 'नया सिपाही' में उतनी ही प्रभावशाली, सचोट उदारता है।

"केशवसुत की सर्वश्रेष्ठ कविताएँ विचार-प्रधान हैं। वे सृजन-प्रक्रिया के रहस्य में गहरे पैठने का यत्न करती हैं। उनमें एक तरह का एकाकीपन है और एक आध्यात्मिक शरण-स्थल खोजने की भावना है। अज्ञात, अप्रमेय के प्रति एक गहरी लगन उनमें मिलती है। एक ऐसी कविता का शीर्षक है 'झपूर्झा'। लड़कियाँ परम्परा से चले आते 'झिम्मा' नामक खेल में डूबी हैं और उनकी तेज नृत्य-लय के अनुकरण में यह अर्थशून्य लगने वाला शब्द गढ़ा गया है। कवि इसमें मन की क्रियाशील अवस्था, जो अनुभूति के विविध प्रदेशों में ऊँची उड़ती है, उसका 'सितारों से आगे के जहाँ' से सम्बन्ध वर्णित करने का यत्न करता है। 'हरपले श्रेय' (खोया हुआ आदर्श) एक दूसरी कविता है जिसमें एक विचित्र संसार में खो जाने की भावना और सृजनशीलता के निवास के लिए एक अनबुझी टोह मुखर की गई है। वर्ड्सवर्थ के 'ओड टु इंटिमेशन्स ऑफ इम्मॉर्टेलिटी' (अमरता के आभासों के प्रति सम्बोधन) का उस पर गहरा प्रभाव है, परन्तु वह उसका अनुकरण मात्र नहीं है। केशवसुत की दार्शनिक कविताएँ पाश्चात्य काव्य-विचार और भारतीय दार्शनिक मान्यताओं का समन्वय व्यक्त करती हैं।"

इस प्रकार से केशवसुत में उस भारतीय पुनर्जागरण की तीन महत्त्वपूर्ण धाराएँ एकत्र मिलती हैं, जो उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू हुआ और टैगोर में आकर

समाप्त हुआ : प्रकृति के प्रति एक सर्वान्तर्यामी-परमात्मा का भाव, मातृभूमि को परतन्त्रता से मुक्त करने को तीव्र इच्छा और सब प्रकार के सामाजिक अन्यायों की शृंखलाओं को तोड़ने और मानवतावाद पर बल देने की प्रेरणा । यह सब कविता में इतिवृत्तात्मक कहलाये जाने पर भी व्यक्त हुई । वर्ड्सवर्थ, शेली और ब्राउनिंग इस मनोरंजक नौका के पथ-निदेशक ध्रुवतारे थे, यद्यपि यह नौका उपनिषदों और कालिदास के समय को अपना जन्म-काल बतलाती थी ।

जीवनी

केशवसुत की जन्म-तिथि और जन्म-स्थान दोनों विवाद के विषय हैं। उनके पहले जीवन-चरितकार थे उनके छोटे भाई सीताराम केशव दामले। उनके पास केशवसुत की जो जन्म-कुण्डली थी उसके आधार पर उन्होंने भारतीय तिथि फाल्गुन वदी १४, शके १७८७ जन्म-तिथि लिखी, जो १५ मार्च, १८६६ ईस्वी की तारीख होती है। इस तिथि पर कई आपत्तियाँ की गई हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जन्म-कुण्डली में ही कोई दोष है, दूसरे लोग भारतीय तिथि-गणना में अधिक मास को जोड़ते हैं और तदनुसार ईस्वी सन् की तारीख में समानता नहीं पाते। कुछ प्रमाणों के अनुसार केशवसुत ७ अक्तूबर, १८६६ ईस्वी में जन्मे, यद्यपि उनकी कविताएँ नियमित रूप से छापने वाली 'काव्य-रत्नावली' पत्रिका में दिसम्बर १९०५ के अंक में छपे मृत्यु-लेख में लिखा है कि उनका 'जन्म मार्च १८६६ में हुआ।' यही बात जनवरी १९०६ के मासिक 'मनोरंजन' में भी दुहराई गई है, दूसरे मृत्यु-लेख में। इस प्रकार सब प्रमाणों से इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनका जन्म १८६६ में हुआ, यद्यपि निश्चित तिथि के बारे में एक-वाक्यता नहीं है। श्रीमती विजया राजाध्यक्ष ने इस विषय पर 'सत्यकथा' (मार्च १९६६) में एक टिप्पणी लिखी है, जिसमें यह लिखा है कि कोई जन्म-तिथि साधिकार नोट की गई हो ऐसा निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, और लिखती हैं कि 'कदाचित् कवि को भी अपनी जन्म-तिथि का पता नहीं था।'

इसी प्रकार का विवाद उनके जन्म-स्थान को लेकर है, और मृत्यु-तिथि के बारे में भी। यद्यपि कई जीवनी-लेखक सोचते हैं कि महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश में रत्नागिरि के पास मालगुंड गाँव में उनका जन्म हुआ ; फिर भी उनके अपने हाथ से स्कूल-रेकॉर्ड में लिखी एक पंक्ति के अनुसार दापोली ज़िले में वलणें वह स्थान था जहाँ उन्होंने जन्म लिया। हाल में महाराष्ट्र सरकार ने जब उनके जन्म-स्थान पर समुचित स्मारक निर्माण करने के लिए एक सभा बुलाई तो वहाँ जिस घर में उनका जन्म हुआ माना जाता था, उस पर भी शंका प्रकट की गई।

उनकी मृत्यु के बारे में भी ऐसी ही मत-भिन्नता है। यह निश्चय है कि ३९ वर्ष की छोटी उम्र में हुबली में वे प्लेग या विषूचिका के शिकार हो गए। ७ नवम्बर,

१९०५ की दोपहर को उनका देहान्त हुआ और आठ दिन वाद १५ नवम्वर, १९०५ को उनकी पत्नी की मृत्यु हुई। परन्तु श्री न० शं० रहालकर ने और केशवसुत के जीवनीकार भाई ने २ नवम्वर १९०५ मृत्यु-तिथि दी है। केशवसुत की पहली जीवनी जिस भाई ने लिखी वह उनसे वारह वरस छोटा था और यह पहला जीवन-रेखाचित्र उसने 'केशवसुत की कविता' के दूसरे संस्करण की भूमिका में लिखा। यह गलत तिथि वाद में केशवसुत के एक भतीजे परशराम चिंतामण दामले ने सुधारी, उसी पुस्तक के चौथे संस्करण में। इस प्रकार ७ नवम्वर, १९०५ केशवसुत की मृत्यु की निश्चित तिथि मानी जा सकती है।

उनकी कविता में उनके जन्म-स्थान के दो उल्लेख मिलते हैं: 'नैऋत्येकडील वारा' (नैऋत्य दिशा की वायु) में वे अपने गाँव के नाम का मालगुंड से माल्य-कूट में संस्कृत रूपांतर करते हैं। कुछ समालोचकों का विचार है कि 'एक खेडे' (एक देहात) में संस्मरणात्मक ढंग से जिस गाँव का वर्णन है वह 'वलणें' जैसा ही है और वहीं के पेड़-पौधे, फूल, पशु-पक्षी आदि का वर्णन उसमें मिलता है; और वैसा ही वर्णन है 'समुद्र में जाती हुई कई नौकाओं और जहाज़ों' का।

पु० के० दामले ने उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार से दिया है:

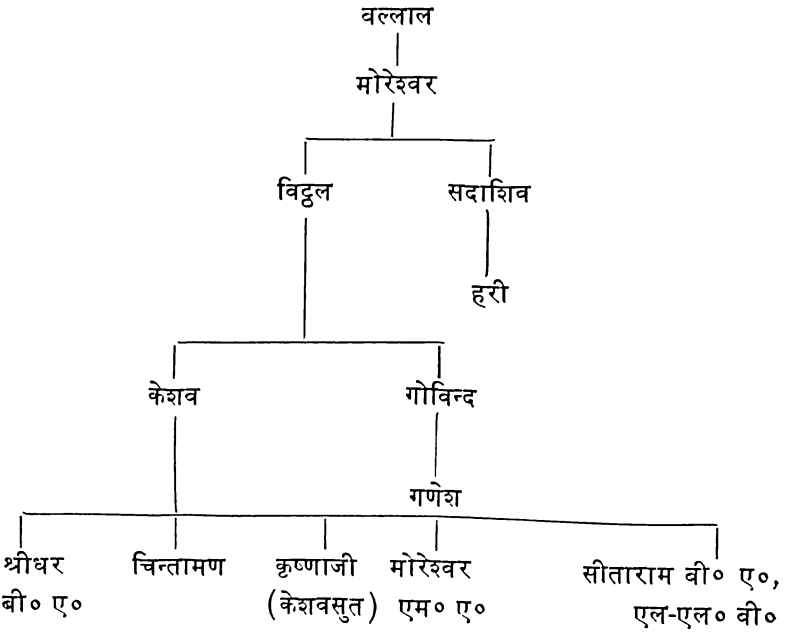

दामले चित्पावन कोंकणस्थ ब्राह्मण जाति का एक कुल-नाम है। ये मूलतः रत्नागिरि के पास कोलंबे गाँव के हैं। केशवसुत के पिता केशव विट्ठल उर्फ़ केसोपंत दामले ने मराठी शाला में शिक्षा पूरी करके पुश्तैनी खेती छोड़कर अध्यापक का काम पसन्द किया। पन्द्रहवें वर्ष में ही केशवसुत के पिता को अध्यापकी करनी पड़ी। वे सरकारी शिक्षा-सेवा में तीन रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त हुए थे; सेवा-निवृत्त होते समय उनका वेतन तीस रुपये मासिक था। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, और वे दस या ग्यारह रुपये की पेन्शन पाते थे। तब एक प्रसिद्ध ग्राम-नेता, ज़मींदार और दामले-परिवार के मित्र विश्वनाथ नारायण मंडलीक की वलणें में कुछ ज़मीन थी उसकी देख-भाल करने लगे। केशवसुत ने एक कविता 'सिंहावलोकन' में इस गाँव का नाम लिखा है। यह कविता वर्ड्सवर्थ के 'द प्रिल्यूड' (उपोद्घात) के ढंग पर लिखी गई है। यद्यपि केसोपंत की आमदनी बहुत थोड़ी थी, वे बिना कर्ज़ किये आराम से रहते थे। अनुशासन, स्पष्टवादिता और संकल्प-शक्ति के लिए उनकी ख्याति थी। केशवसुत ने अपनी कविताओं में पिता के लिए बहुत आदर व्यक्त किया है। केसोपंत की मृत्यु १८९३ ईस्वी में हुई।

केशवसुत की माता मालदौली के ज़मींदार करन्दीकर-परिवार की थीं। वह अपने पिता की एक-मात्र पुत्री थीं और उज्जैन में १९०२ ईस्वी में उनका स्वर्गवास हुआ। केशवसुत ने अपनी माता से भावुकता, आस्तिकता, उदारता और व्यापक मानवतावाद आदि गुण पाये। अपनी माता की मृत्यु पर केशवसुत ने एक विलापिका भी लिखी है।

केशवसुत अपने भाई-बहनों में चौथे थे। उनके पाँच भाई और छः बहनें थीं। सबसे बड़ा भाई, ग्यारह वर्ष की आयु में डूबने से मर गया। दूसरा था श्रीधर, जो बहुत बुद्धिमान न था और उसे जगन्नाथ शंकरशेट छात्रवृत्ति मिली, चूँकि उसने रत्नागिरि से हाई स्कूल परीक्षा में प्रथम स्थान पाया था। उसने एलफिन्स्टन कालेज से १८८२ में बी० ए० की परीक्षा दी, और फिर बड़ौदा में तब नये ही खुले कालेज में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त हुआ। परन्तु एक वर्ष के भीतर ही विषम-ज्वर से उसकी मृत्यु हो गई, जनवरी १८८३ में।

केशवसुत की आरम्भिक शिक्षा बहुत उपेक्षित-सी रही। अपने छोटे भाई के साथ उन्होंने रत्नागिरी ज़िले के खंड में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। आगे की अंग्रेज़ी पढ़ाई के लिए दोनों भाई बड़ौदा भेजे गए। दोनों के विवाह उन दिनों

की प्रथा के अनुसार बड़ी छोटी उम्र में हुए—केशवसुत का पन्द्रह वर्ष की आयु में और छोटे भाई का तेरह वर्ष की। केशवसुत की पत्नी रुक्मिणीबाई चितळे परिवार की थी और विवाह के समय उसकी आयु आठ वर्ष की थी। उनके बारे में कुछ पता नहीं चला, सिवा इसके कि वह बहुत दयालु और परिश्रमी थीं, और विशेष सुन्दर नहीं थीं। पति-पत्नी दोनों लजीले, संकोची और स्वभाव से समाज-भीरु थे। केशवसुत के तीन पुत्रियाँ थीं : मनोरमा, वत्सला, सुमती। केशवसुत अपनी एक कविता 'म्हातारी' में अपनी दूसरी पुत्री का उल्लेख करते हैं। केशव-सुत के श्वसुर केशव गंगाधर चितले खानदेश ज़िले के चालिसगाँव में एक मराठी-शाला के हेडमास्टर थे।

उनके बचपन के बारे में, सिवा इन दो बातों के कि वे शरीर से बहुत कमज़ोर और स्वभाव से चिड़चिड़े थे, बहुत कम जानकारी मिलती है। दुर्बलता के कारण वे अधिक दौड़-धूप वाले और शक्ति-प्रधान खेलों में भाग नहीं ले सकते थे। वे लम्बे-लम्बे रास्तों पर अकेले घूमना पसन्द करते थे और बोलते बहुत कम थे। उनकी माता उन्हें कुछ सिरफिरा कहती थी। यद्यपि इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि उनका बाह्य रूप कैसा था, फिर भी कुछ मित्रों ने लिखा है, "उनका चेहरा विचारपूर्ण और गम्भीर था" ('किरात')। "जब वे दूसरों से बात करते तो नीची नज़र कर लेते, पर जब भी आँखें उठाते तो उनकी चमक भेद लेने वाली होती थी।" (विनायक करंदीकर)। "वे पाँच फुट से कुछ अधिक ऊँचे रहे होंगे।" (गद्रे)। वे गोरे, गोल चेहरे के थे और उनके भाल पर सदा ही लकीरें और बल पड़े रहते। एक बार उनके अध्यापक ने ऐसी दुर्मुख मुद्रा के लिए उन्हें डाँटा तो केशवसुत ने अपनी कविता 'दुर्मुखलेला' में लिखा :

इसका मुख है कुरूप, पर वह, विधि चाहे नवकाव्य लिखेगा,
जिसको पढ़कर हर्षित होगी मही और डोलेंगे जन-जन
इस दुर्मुख के मुख से ऐसा बहने वाला है भविष्य में
सुन्दर सरस वाङ्मय निष्यन्द कि चारों ओर प्रवाह विलक्षण
तुम ही नहीं तुम्हारे वंशज पीकर उसे अघा जायेंगे
कोई भी तब नहीं कहेगा—'कविवर का कैसा था आनन ?'

(१८८६)

इस तथ्य से सम्बद्ध एक बात तो यह भी है कि ये अपना फोटो खिचवाना

पसन्द नहीं करते थे। यद्यपि आज उनके भाइयों के फोटो मिलते हैं, फिर भी केशवसुत के जीवनकाल में न उनका फोटो लिया गया, न चित्र खींचा गया। एक वार उज्जैन में, जहाँ उनके वड़े भाई दर्शन के प्रोफेसर थे दामले-परिवार के सव सदस्य एकत्रित हुए थे, और यह प्रस्ताव रखा गया कि पूरे परिवार का एक फोटो खींचा जाए, पर केशवसुत उसमें शामिल नहीं हुए।

उनका वचपन और शिक्षा काफी कष्टों में और खंडित रूप में हुई होगी। उनकी एक कविता से यह पता चलता है कि उन दिनों मास्टर वच्चों को बुरी तरह पीटते और सज़ा दिया करते थे। इससे उनके मन में वड़ा गहरा ज़ख्म वना होगा, जो कभी अच्छा नहीं हो सका।

१८८२ में वे अपने वड़े भाई श्रीधर केशव के पास वड़ौदा गए, जो विशेष योग्यता के साथ ग्रेजुएट वने और संस्कृत और गणित के प्रोफेसर नियुक्त हुए। दुर्भाग्य से केशवसुत अपने वड़े भाई के पास आठ महीने से अधिक न रह सके। श्रीधर २३ वर्ष की आयु में विषम-ज्वर के शिकार वने, ग्रेजुएट पदवी प्राप्त करने के एक ही वर्ष वाद। इससे परिवार को भयानक धक्का लगा। केशवसुत को शिक्षा के लिए अपने मामा रामचन्द्र गणेश करंदीकर के पास जाना पड़ा, जो वर्धा में वकील थे। उन दिनों वर्धा में अंग्रेज़ी शिक्षा का समुचित प्रवन्ध नहीं था। इसलिए कृष्णाजी और उनके छोटे भाई मोरोपन्त को नागपुर भेजा गया। उनके पिता शिक्षा का व्यय नहीं उठा सकते थे और नागपुर की भयानक गर्मी केशवसुत के दुर्वल स्वास्थ्य के लिए असह्य थी। सात महीने केशवसुत नागपुर में रहे। इस अवकाश में मराठी के प्रसिद्ध कवि रेवरंड नारायण वामन टिळक और प्रो० पटवर्धन से कवि का परिचय वढ़ा। प्रो० पटवर्धन की प्रशंसा में उन्होंने कविता भी लिखी है।

रेवरंड नारायण वामन टिळक के सम्पर्क ने केशवसुत को प्रेरणा दी, कविता लिखने के प्रति प्रेम जगाया। टिळक इस सम्पर्क के वारे में लिखते हैं: "केशवसुत और मैं वहुत घनिष्ठ मित्र थे। मैं उनकी काव्य-प्रतिभा के विकास को देख सकता हूँ। हम दो-तीन महीने साथ-साथ रहे, नागपुर में १८८३ में, १८८८ और १८८९ में पूना में और १८९५-९६ में वम्वई में।" पूना में जव वे मिले, केशवसुत न्यू इंगलिश स्कूल में मैट्रिक की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। और वम्वई में जव मिले तो वे मराठी ईसाई मासिक 'ज्ञानोदय' पत्रिका के कार्यालय में थे। केशवसुत के निकट सम्वन्धी डरते थे कि कहीं वह भी ईसाई न हो जाए,

क्योंकि वह 'ज्ञानोदय' और रेवरंड टिळक के विशेष सम्पर्क में आए। केशवसुत वाइबल पढ़ना पसन्द करते थे, और एक वार अपने छोटे भाई सीताराम से उन्होंने कहा था कि वे ईसाई धर्म अपनाना चाहते हैं (वि. स. करंदीकर, रत्नाकर, फरवरी १९२६)। यद्यपि केशवसुत और टिळक मित्र थे, परन्तु उनकी कविता वहुत भिन्न थी। केशवसुत वहुत ओजस्वी थे और उनमें सहसा चमकने वाली प्रतिभा थी। टिळक अधिक सौम्य और सपाट हैं। टिळक केशवसुत की इतनी प्रशंसा करते थे कि उन्होंने केशवसुत के जीवन-काल में ही उन पर एक कविता लिखी और उनकी मृत्यु के वाद दो कविताएँ—'काव्य-रत्नावली' (जनवरी १९०६) में और 'मनोरंजन' (फरवरी, १९०६) में।

नागपुर के अल्पकालीन वास में एक समाज-सुधारक वासुदेव बळवन्त पटवर्धन से केशवसुत का परिचय हुआ। १८८८ में केशवसुत ने उन पर एक लम्वी कविता लिखी। ऐसा लगता है कि पटवर्धन के कार्य-विषयक विचारों ने केशवसुत पर गहरा प्रभाव डाला था। दोनों के विचार प्रगतिशील थे। दोनों एकांतप्रिय थे और भीड़ से दूर रहते थे। पटवर्धन वाद में डेक्कन वर्नाक्यूलर सोसाइटी के आजीवन सदस्य वने, और आगरकर के वाद 'सुधारक' पत्र के सम्पादक। पटवर्धन पर लिखी कविता में केशवसुत ने कहा था :

उस अन्तरिक्ष के तारों में
कवियों को आत्माएँ दीखती हैं
जनसाधारण को काँच से दिखाई देता है
कवि को पत्थर में भी दिखाई देता है।

कुछ समीक्षकों ने इन पंक्तियों पर इमर्सन का प्रभाव देखा है। वस्तुतः इमर्सन स्वयं वेदान्त से प्रभावित था और केशवसुत अप्रत्यक्ष और अनजाने रूप से इसी सर्वान्तर्यामी एकात्मा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

१८८३ में केशवसुत नागपुर छोड़कर अपने गाँव खेड़ को लौट आए, जो कोंकण में था। एक साल वहीं रहे। फिर आगे की शिक्षा के लिए पूना गए। न्यू इंग्लिश स्कूल के पुराने कागज़ों से यह तथ्य मिलता है कि ११ जून १८८४ में केशवसुत ने इस स्कूल में प्रवेश पाया। पूना में वे १८८९ तक रहे और वहीं से उन्होंने मैट्रिक पास किया, चौवीस वरस की आयु में। इतनी देर लगने का कारण यह था कि वे दो वार फेल हुए, अंग्रेज़ी में उन्हें पर्याप्त नम्वर नहीं मिले। उनके

फेल होने का एक कारण यह था कि वे बहुत धीमे-धीमे लिखते थे। एक बार काव्य-चर्चा में वे ऐसे डूबे रहे कि परीक्षा-भवन में ही जाना भूल गए।

न्यू इंग्लिश स्कूल में उनकी भेंट हरी नारायण आपटे से हुई। आपटे मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार और बाद में केशवसुत के मरणोपरान्त प्रकाशित एक मात्र काव्य-संग्रह के सम्पादक-प्रकाशक हुए। आपटे केशवसुत के कक्षा के साथी ही नहीं बल्कि घनिष्ठ मित्र थे। वहीं पूना में, गोविन्द वासुदेव कानिटकर नामक स्त्री-शिक्षा-समर्थक और अंग्रेजी साहित्य के प्रेमी कवि-अनुवादक से उनकी मैत्री हुई। कानिटकर की पत्नी भी एक विदुषी थीं। न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे ने कानिटकर की ऐतिहासिक विषयों पर 'अकबर' और 'कृष्णाकुमारी'-जैसी लम्बी कविताओं की प्रशंसा की थी, यद्यपि वे स्काट-जैसे अंग्रेज़ी लेखक की शैली पर लिखी गई थीं। कानिटकर को श्रीमती हाइमेन्स, एलिज़ावेथ बैरेट ब्राउनिंग, तोरुलता दत्त की कविताएँ पसन्द थीं; उन्होंने टामस मूर, टामस हुड, बायरन, बर्न्स, कीट्स के गीतों का और जॉन स्टुअर्ट मिल के 'सब्जुगेशन ऑफ वीमेन' (स्त्रियों की दासता) का अनुवाद किया था। मासिक 'मनोरंजन' और 'निबंध-चंद्रिका' में कानिटकर-दम्पति, आपटे और केशवसुत नियमित रूप से कविताएँ प्रकाशित करते थे। केशवसुत की तेरह कविताएँ १८८८ से १८९० के बीच इन पत्रों में छपीं।

यह मनोरंजक तथ्य है कि केशवसुत की काव्य-प्रतिभा के विकास में अंग्रेज़ी कविता का अध्ययन सहायक हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि उनका यह पढ़ना पाल-ग्रेव की 'गोल्डन ट्रेज़री' और मैके के 'ए थाउजंड एंड वन जैम्स ऑफ इंग्लिश पोएट्री' तक सीमित था। परन्तु उन्होंने और भी अंग्रेज़ी किताबें अवश्य पढ़ी होंगी, उदाहरणार्थ मैकमिलन के 'दि वर्क्स ऑफ राल्फ वाल्डो इमर्सन', जिसमें से कई उद्धरण वे निजी पत्रों में देते हैं। और तोरु दत्त का 'ए शीफ ग्लीण्ड इन दि फ्रेंच फील्ड्स' भी पढ़ा होगा। उन्होंने ड्रमंड, गैटे, पो, लौंगफेलो और शेक्सपियर के कुछ सॉनेट भी अनुवाद किए हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी में भी कुछ पद्यबद्ध लिखने का यत्न किया। प्रो० मं० वि० राजाध्यक्ष अपने 'पाँच मराठी कवि' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि उनका संस्कृत काव्य का अध्ययन भी गहरा था; परन्तु कुछ अन्य समीक्षक इस बात को सही नहीं मानते, चूँकि मैट्रिक की परीक्षा में उन्हें संस्कृत में विशेष नम्बर नहीं मिले।

यद्यपि न्यू इंग्लिश स्कूल में केशवसुत के अध्यापकों में आगरकर और लोक-

मान्य वाल गंगाधर तिलक-जैसे प्रसिद्ध गुरुजन थे, फिर भी लगता है केशवसुत की रुचि उनके द्वारा पढ़ाए गए विषयों में नहीं थी। समाज-सुधारक आगरकर का उन पर गुरु के नाते अधिक प्रभाव पड़ा। कक्षा में लोकमान्य तिलक-जैसे अध्यापकों के केशवसुत व्यंग्य-चित्र वनाते या कागज़ पर निरर्थक रेखाएँ खींचते रहते। फिर भी उस समय के वड़े-वड़े वक्ताओं का उन पर प्रभाव पड़ा। पूना में वे दिन आँधी-भरे थे। १८८० से चिपळूणकर ने 'निवंधमाला' में अंग्रेजी शिक्षा को 'वाघिन का दूध पीना' कहना शुरू किया था, तिलक 'केसरी' के स्तम्भों में गर्जना कर रहे थे और आगरकर अपने 'सुधारक' में समाज-सुधार के नवयुग का आवाहन कर रहे थे। किर्लोस्कर और भावे मराठी रंगमंच का निर्माण कर रहे थे; हरी नारायण आपटे मराठी कथा-साहित्य को आकार दे रहे थे। परन्तु केशवसुत लज्जालु स्वभाव के थे, और वे समाज-सुधारकों और राजनीतिज्ञों के इस निनादमय रथ के साथ जाना पसन्द नहीं करते थे। वे कविता लिखने के अपने माध्यम से चिपटे रहे और शैली की भाँति आशा करते रहे—

मेरे मृत विचार सारे विश्व में फैला दो,
सूखे पत्तों की तरह, जिससे नया जन्म जल्दी हो!

(पश्चिमी हवा के प्रति)

यहाँ उनके जीवन पर उनके दो भाइयों के अप्रत्यक्ष प्रभाव का उल्लेख आवश्यक है। उनके छोटे भाई मोरो केशव दामले (१८६८-१९१३) वम्वई यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट थे, जिनके दर्शन और इतिहास ये दो विषय थे। वे माधव कॉलेज, उज्जैन में १८९४ से १९०७ तक दर्शन के प्रोफेसर रहे और वाद में १९०८ में यह कॉलेज वन्द होने पर नागपुर सिटी स्कूल में पढ़ाते रहे। पूना में १९१३ में एक रेल-दुर्घटना में उनकी असामयिक मृत्यु हुई। उन्होंने १९११ में मराठी का पहला शास्त्रीय व्याकरण लिखा, जो ९९० पृष्ठों का एक वृहद् ग्रन्थ है। वाद में वै० का० राजवाड़े-जैसे संस्कृत विद्वानों ने उसे वहुत शास्त्रीय नहीं माना। मोरो केशव ने वर्क के निवंधों का अनुवाद किया और मराठी में आगमनात्मक-निगमनात्मक तर्कशास्त्र पर पुस्तकें लिखीं। दूसरे भाई थे सीताराम केशव दामले (१८७८-१९२७), जो पत्रकार, उपन्यासकार और देशभक्त थे। वे 'ज्ञान प्रकाश' और 'राष्ट्र मत' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करते थे; मुळशी सत्याग्रह में भाग लेने के लिए उन्हें दो वर्ष की सज़ा हुई। दामले-परिवार एक प्रतिभाशाली

व्यक्तियों का परिवार था, परन्तु इसमें प्रायः सभी व्यक्तियों की मृत्यु अल्पायु में हुई। शायद यह बात केशवसुत की कविता में करुण स्वर का एक कारण हो।

मैट्रिक के बाद केशवसुत गरीबी के कारण अपनी शिक्षा आगे नहीं चला सके। वे १८९० में नौकरी की तलाश में बम्बई पहुँचे। कोई ऊँची डिग्री न होने से उन्हें कठिनाई थी ही, साथ ही उनका स्वाभिमान भी बड़ा विलक्षण था। वे अपने परिवार के वि० ना० मंडलिक-जैसे उच्चवर्गीय मित्रों से भी सहायता लेना नहीं चाहते थे। वे पहले मिशन स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए, और बाद में अमरीकन मिशनरियों के पत्र 'ज्ञानोदय' के कार्यालय में काम करने लगे। बाद में वे दादर न्यू इंग्लिश स्कूल में अध्यापक बने। कभी-कभी उन्हें अपनी सीमित आय (उन्हें अपने जीवन में बीस से पच्चीस रुपये माहवार से अधिक वेतन कभी नहीं मिला) ट्यूशन करके पूरी करनी पड़ती। या कभी उन्हें अपने गाँव चले जाना पड़ता, क्योंकि उन्हें कोई काम ही न मिल पाता था। उनके जीवन का यह अनिश्चित, ऊँच-नीच से भरा प्रवाह उनके पिता को पसन्द नहीं था। पिता का आग्रह था कि केशवसुत प्रवाह-पतित लकड़ी की तरह इधर-उधर भटकते न रहें, किसी एक जगह पर जम जाएँ। इसलिए बहुत अनिच्छापूर्वक केशवसुत ने १८९३ में बम्बई में बसने की बात सोची। उनकी 'सिंहावलोकन'-जैसी संस्मरणात्मक कविताओं में परिवार के अन्तर्गत कलह का उल्लेख है। वे कल्याण में १८९१ तक एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाते रहे। उनकी इच्छा के विरुद्ध जब उनका स्थानान्तर कराची कर दिया गया तो इस बात को लेकर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। वे टेलीग्राफ़ द्वारा सन्देश देने का काम भी सीखने लगे। १८९३ में सामन्तवाड़ी में छः महीने के लिए वे शिक्षक बने।

वे बम्बई में अध्यापक के रूप में स्थिर जीवन बिताना ही चाहते थे कि उन्हें काशिनाथ रघुनाथ मित्र, जनार्दन घोंड़ो भाँगले और गोविन्द बालकृष्ण कालेलकर मिले, जो तीनों तरुण साहित्यिक और सम्पादक थे। केशवसुत ने 'विद्यार्थी मित्र' और 'मासिक मनोरंजन' (स्थापना १८९५) में बहुत-सी कविताएँ लिखीं। मित्र और भांगले बंगाली और गुजराती अच्छी तरह जानते थे। भांगले ने बंकिमचंद्र के उपन्यास और गुजराती से एक उपन्यास अनुवादित किया था। १८९४ में बंकिमचंद्र का प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' मराठी में 'आनंदाश्रम' बना। इसी-में प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' था। केशवसुत ने अपनी कविता 'कवितेचे प्रयोजन' (१८९९) में भारतमाता के लिए 'सुजला' और 'सुफला' विशेषण प्रयुक्त

किये हैं। वम्बई में रहते हुए वे 'माधवानुज' (डॉ० काशीनाथ हरी मोडक, १८७२-१९१८), 'किरात', गजानन भास्कर वैद्य (जो 'हिन्दू मिशनरी' नाम से प्रसिद्ध थे) आदि कवियों के सम्पर्क में आए। वैद्य के भाई ने पेन्सिल से केशवसुत का एक रेखाचित्र वनाया था, स्मृति के सहारे। केशवसुत प्रार्थना-समाज (महाराष्ट्र में वंगाल के ब्रह्म-समाज के समान पन्थ), आर्य समाज, ईसाई मिशन आदि स्थानों में व्याख्यान सुनने जाना पसन्द करते थे। १८९६ में जव वम्बई महामारी के चक्कर में आ गई तव केशवसुत को वम्बई छोड़कर खानदेश के भड़गाँव में जाना पड़ा। वे अपनी पत्नी और पुत्रियों को चालिस गाँव में सुरक्षित रखना चाहते थे, अपने श्वसुर के पास, जो वहाँ हेडमास्टर थे। उनके श्वसुर ने उन्हें भडगाँव के एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल में अध्यापक पद के लिए आवेदन-पत्र देने को कहा और वे वहाँ पन्द्रह रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त भी हो गए।

१८९७ से मार्च १९०४ तक केशवसुत खानदेश में रहे, जहाँ वे पहले भडगाँव के म्युनिसिपल स्कूल में काम करते रहे। परन्तु वेतन असन्तोषजनक था और पदोन्नति की कोई सुविधा नहीं थी, इसलिए वे १८९८ में सरकारी एस० टी० सी० परीक्षा में बैठे और उत्तीर्ण हुए। १९०१ में वे फैजपुर (खानदेश) में अंग्रेजी स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त किये गए। वहाँ वे अंग्रेजी पढ़ाते थे। दुर्भाग्य से, फैजपुर में अगले ही वर्ष महामारी फैल गई और स्कूल वन्द कर देने का भय पैदा हुआ। यहाँ भी केशवसुत के स्वतंत्र स्वभाव और मुक्त चिन्तन के कारण अधिकारियों से उनकी लड़ाई हो गई, और उन्होंने स्थानान्तर के लिए आवेदन-पत्र दिया। अप्रैल १९०४ में मराठी अध्यापक के नाते उनका धारवाड़ हाई स्कूल में स्थानान्तर हुआ।

खानदेश में वे 'काव्य-रत्नावली' नामक केवल कविताएँ प्रकाशित करने वाले मासिक पत्र के संपादक के सम्पर्क में आए। सम्पादक नारायण नरसिंह फडणीस बड़े काव्य-मर्मज्ञ थे और उन्होंने केशवसुत के बारे में लिखा है: "केशवसुत उन पाँच कवि-रत्नों में से थे जिनपर हमारी पत्रिका को गर्व था। उनकी 'हरपले' श्रेय' कविता अन्तिम रचना थी जो हमने प्रकाशित की।...वे स्वतन्त्र विचारों के कवि थे। उनकी कविताओं में विचारों की भव्यता और उदारता देखकर सुखद आश्चर्य होता था। उनका स्वभाव वहुत अव्यावहारिक था, कभी-कभी विक्षिप्त-जैसा लगता था। हम उन्हें दो-तीन वार ही मिले। पर वे वातचीत में वहुत संकोची थे।" (काव्य-रत्नावली, १९०५ का अन्तिम अंक)

खानदेश में केशवसुत की मैत्री प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि 'विनायक' (विनायक जनार्दन करंदीकर १८७२-१९०९) से हुई। वे बम्बई में १८९१-९२ में मिले। केशवसुत उन्हें 'महाराष्ट्र का वायरन' कहते थे। दोनों में बहुत-सी बातें समान थीं। विशेषतः सामाजिक अन्याय और राजनैतिक दासता के विरुद्ध विद्रोह। केशवसुत के जीवन के ये अंतिम वर्ष कुछ अच्छे बीत रहे थे। उन्हें आवश्यक सहज परिवेश और पढ़ने को काफ़ी पुस्तकें मिलीं। उन्होंने काव्य की प्रकृति पर पर्याप्त विचार किया और गम्भीर विषयों पर मित्रों के साथ पत्र-व्यवहार भी किया। उनकी रचनाओं में अब रहस्यवाद की ओर रुझान दिखाई देता था।

केशवसुत अप्रैल १९०४ से डेढ़ वर्ष धारवाड़ में रहे। यहाँ वे जीवन की असारता और उसके अनिवार्य करुण अन्त पर विचार करते रहे। शायद उन्हें अपने अकाल मरण की पूर्वसूचना प्राप्त हो गई थी। २५ मई, १९०५ को चिपलूण में लिखी अपनी अन्तिम कविता के बारे में लिखते हुए वे अपने एक मित्र को लिखते हैं : " 'मनोरंजन' के गतांक में मेरी रचना पढ़कर मेरी मनःस्थिति का पता लगा सकते हैं। हृदय में जैसे घाव पड़ा है। परन्तु हाय ! इसका उपाय कहाँ है ?"

सचमुच कोई उपाय नहीं था। वे अपने बीमार चाचा हरी सदाशिव दामले से मिलने अक्तूबर के अन्त में हुबली गए। उनके साथ उनकी पत्नी और पुत्री भी थीं। चार-पाँच दिन वहाँ ठहरकर वे धारवाड़ लौटने वाले थे। पर ७ नवम्बर को उन्हें महामारी लील गई और उनकी मृत्यु हो गई। उनका दाह-संस्कार उनके चाचा ने किया, और तीन पुत्रियाँ कोंकण भेज दी गईं। उनमें से एक की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। अन्य दो के विवाह हो गए और बाद में उनके बारे में विशेष पता नहीं चला।

केशवसुत के करुण छोटे जीवन के ३९ वर्ष। उनके सम्बन्ध में सबसे अच्छी टिप्पणी उन्हींके शब्दों में होगी। कवि सम्मेलनों के बारे में अपने एक मित्र को व्यक्तिगत पत्र में उन्होंने लिखा था :

"प्रतिवर्ष कवियों के एक सम्मेलन के विषय में—व्यावहारिक लोग व्यावहारिक कार्यों के लिए निश्चित अवधि के बाद मिलते रहते हैं। कवियों को स्वप्न दर्शियों के नाते एकांत में बैठना चाहिए, सबसे अलग, नीरवता की आकाश-ध्वनि को सुनते हुए और अपनी अनगढ़ भाषा में उसे व्यक्त करते हुए, जब उन पर प्रतिभा प्रसन्न हो जाए। कभी-कभी दो-तीन समानधर्मा साथ आ सकते हैं··· पर उनसे अधिक संख्या सब मज़ा किरकिरा कर देगी।"

और उन्होंने उस समय की मराठी कविता की दशा के बारे में एक अन्य मित्र को लिखा :

"कृपया उनसे कहिए कि मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे एक लम्बी कविता लिखें। छोटी-छोटी कविताएँ लिखने में क्यों समय नष्ट करते हैं। पिछली एक शताब्दी में कोई लम्बी महत्त्वपूर्ण कविता नहीं रची गई; और यह काम तो··· और···जैसी प्रतिभाओं का है कि वे कलंक को दूर करें। मुझे दुःख है कि मैं बहुत छोटा हूँ और अपने इस बौनेपन के ऊपर उठने के कोई लक्षण अपने में नहीं पाता। इसलिए मुझे अपने प्रति घृणा है और मुझे वे कोई लोग पसन्द नहीं जो छोटी-चीज़ों के लिए प्रयत्न करते हैं।"

ये पत्रांश मूलतः अंग्रेज़ी में लिखे पत्रों से हैं।

प्रकृति

सेनेका ने कहा था 'समस्त कला प्रकृति का अनुकरण है' और उससे बिलकुल उलटे ऑस्कर वाइल्ड ने कहा था कि 'प्रकृति कला का अनुकरण करती है।' यह आवश्यक नहीं है कि इन दोनों कथनों से हम सब सहमत हों। केशवसुत की कविता में प्रकृति के लिए एक उदास, अविचल आसक्ति मिलती है, मानो कवि उसे अपना शरण-स्थल मानता है। प्रकृति में कवि अपनी अभिलाषाओं की प्रतिगूँज पाता है। वही उसके एकाकी, उदास समय का छिपने का स्थान है। वि० स० खांडेकर ने उनकी 'एक देहात' और 'नैऋत्य की हवा'-जैसी कविताओं का उल्लेख किया है, जिनमें कोंकण जनपद के दृश्यों के द्वारा कवि की घर लौटने की प्रवृत्ति वाला आकर्षण दुहराया गया है। 'एक देहात' में केशवसुत कहते हैं :

वहाँ ऊँचे देवालय नहीं हैं
पर बड़े-बड़े पर्वत हैं
वहाँ झरने स्तोत्र गाते हैं
हवा वहाँ अपना सुर लगाती है।

केशवसुत की केवल दो कविताएँ शुद्ध प्रकृति-वर्णनात्मक कविताएँ कही जा सकती हैं : एक तो 'वर्षा के प्रति' है और दूसरी है 'दीवाली', जिसमें प्रथमार्द्ध ऋतु-वर्णनात्मक है। 'पर्जन्याप्रत' (वर्षा के प्रति) केवल बीस पंक्तियों की रचना है पर कालिदास के 'ऋतुसंहार' की याद दिलाती है। यह कविता स्पष्ट यथार्थवादी वर्णन से शुरू होती है :

ग्रीष्म से तप्त धरा मानो झुलस गई है;
पशु व्यर्थ चारा खोज रहे हैं, आँखों में धूल जम रही है;
छाया में कहीं जल यदि हुआ तो मुँह से झाग गिराते
वहीं पशु जमा हो जाते हैं, पथिक भी हाँफ रहे हैं।
ऐसी दशा होकर बहुत दिन बीत गये, हे पावस !
तू अब जल्दी आ, लंका की ओर से आ

तेरे आगमन के लिए वापीतल में दर्दुरपति
रात-रात भर अपना गला फाड़कर तुझे पुकार रहे हैं।

'दिवाळी' नामक कविता में शरत-सुन्दरी के वर्णन में प्राचीन कविता का स्पर्श है। केशवसुत इस ऋतु के सवेरे को ग्वाला, दोपहर को अर्घ्य देने वाला साधु और शाम को थका-माँदा किसान कहते हैं। कुछ कविताएँ पुष्प और तितली के प्रति भी हैं, दोनों का उपयोग वहाँ प्रतीक रूप में किया गया है। प्रकृति का विविध वर्णमय वैभव उतना वर्णित नहीं है, जितना कि मानवीय अवस्था पर दार्शनिक मनन करने के लिए प्रकृति को वहाना वनाया गया है।

ऐसा लगता है कि केशवसुत ने इमर्सन का 'प्रकृति' विषयक निवंध पढ़ा था, जिसमें आरण्यक-कालीन प्राचीन ऋषियों की भाँति उन्होंने कहा था, 'वनों में है चिरन्तन यौवन, उदात्त का चिरन्तन निवास। दैवी कुछ भी नहीं मरता। सव कुछ जो अच्छा है वह चिरन्तन रूप से पुनर्निर्माण करता रहता है। प्रकृति का सौन्दर्य मन में पुनः आकार ग्रहण करता है, शुष्क चिन्तन के लिए नहीं, परन्तु नवीन सृजन के लिए। शांत दृश्यों में विशेषतः सुदूर क्षितिज-रेखा में मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार सौन्दर्य खोजता है।" इसलिए कवि को प्रकृति में शान्ति मिलती है। अपनी 'अकेले दूर जाते हुए' कविता में वे कहते हैं :

जीवन के स्वप्न-भंग वहुत हुए
कई आशाएँ मर गईं
उन्हें खोजते हुए, चलो वन की ओर चलें
एकतारा छेड़ते

केशवसुत को प्रकृति कभी पथ-निर्देशक और कभी एक वन्य सहचरी की भाँति लगी, वह कभी भी 'लाल पंजों और नाखूनों वाली' अहेरिन नहीं थी। अपनी 'वात-चक्र' कविता में वे लिखते हैं :

यहाँ क्यों ठहरूँ
यहाँ क्या है जो मुझे वाँधता है ?
मुझे लगता है कि मैं गोल-गोल घूमूँ
और वात-चक्र के चक्कर में खो जाऊँ
सच्चिदानन्द में।

'खोया हुआ आदर्श' नामक लम्बी विचार-प्रधान कविता में, जो उन्होंने जीवन के अन्तिम दिनों में लिखी, वे गहरी निराशा में रहे होंगे, क्योंकि प्रकृति अब उन्हें पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं करती :

जहाँ कहीं झरने और जंगल हैं
वहीं मेरा मन बसता है
क्योंकि वहाँ मेरा साक्षात्कार होता है
जीवन के आदर्श से।
इसलिए मैं बार-बार इन विजन-पथों की ओर आता हूँ
इसलिए मैं उनकी मुक्त-भाव से याद करता हूँ
परन्तु इससे मुझे उनकी उपस्थिति की झाँकी मिलती है
और दूसरे ही क्षण वे खो जाते हैं
तब मैं इस जंगल में चिल्लाता हूँ
मुझे अपना खोया हुआ आदर्श कभी नहीं मिलेगा।

केशवसुत इन नदियों के किनारे चलते हुए उस 'परम दिव्य और चमत्कार-मय' को देखते हैं। वे सहसा अनुभव करते हैं, हैज़लिट की भाँति, कि 'उस सामने वाले बादल के छोर से मैं अपने पूर्व-जीवन में डुबकी लगाऊँगा और उसीमें क्रीड़ा करूँगा।'

केशवसुत की प्रकृति के प्रति रोमांटिक प्रवृत्ति उस समय की परंपरित मराठी कविता के संदर्भ में देखी जा सकती है, जो संस्कृत की रूढ़ियों को काम में लाती थी और प्रकृति का उपयोग अधिक-से-अधिक एक पीछे पड़े हुए पर्दे के या आलम्बन के रूप में करती थी। उनके समकालीनों में रेवरंड टिळक 'फूलों और बच्चों के कवि' माने जाते हैं; बालकवि ठोंबरे प्रकृति के पुत्र थे। केशवसुत के बाद की कविता में मनुष्य बनाम प्रकृति का संघर्ष तीव्र होता है, उत्तरकालीन रोमेंटिकों में जैसे गड-करी, या 'बी' में भी। केशवसुत ने पहली बार प्रकृति को वैयक्तिक अनुभूति के स्तर पर लिया। उनके लिए प्रकृति एक दैवी और अतीन्द्रिय उपस्थिति बन गई। यह प्रकृति-वर्णन पुराने ऋतु-वर्णन या शाम-सवेरे के रूढ़-संकेत-भरे गणनायुक्त सविवरण वर्णनों से भिन्न था। केशवसुत की संध्या एक भिन्न चित्र है :

संध्या : समुद्र पर डूबता सूर्य
उसका सुन्दर चेहरा लहरों को चूमेगा
जैसे कि धरती पर झरा फूल, धूल हो जाता है
यह गोला भी गोलाइयों में खो जायगा

प्रेमी-जन शाम को आनन्द से आशीर्वाद देते हैं
मैं तुम्हारी ईर्ष्या नहीं करता। क्या मुझमे कोई भावना नहीं
मैं घर छोड़कर दूर आया हूँ, और क्या इसीलिए
शाम को इतना उदास हूँ ? मैं और क्या हो सकता था ?

'प्रकृति ईश्वर का काव्य है' या 'प्रकृति के भीतर ईश्वर निवास करते हैं' आदि कल्पनाएँ केशवसुत को नहीं भाती थीं। कभी भी उनका सद्भाग्य चमका नहीं था, इसलिए वे निर्मम परमात्मा की कल्पना नहीं कर सकते थे। केशवसुत के गहरे मित्र 'किरात' ने लिखा है, "यह नहीं लगता कि उनकी ईश्वर में आस्था थी। यह लगता है हाल में (यह लेख मासिक 'मनोरंजन' में जनवरी १९०६ को छपा था, जो कि कवि का अन्तिम वर्ष था) इधर दो-तीन वर्षों से उनका मत कुछ हल्का-सा बदला है। वे अपनी चिट्ठी के ऊपर 'श्री राम !' लिखने लगे हैं। एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें कोई रहस्यमय मधुर अन्तर्संगीत सुनाई देता है, ऐसा संगीत जिसका कई भक्तों ने उल्लेख किया है और शेक्सपियर ने 'परिक्लीस' में भी। तब मैंने उनसे कहा—"अब तुम्हें ऐसा अन्तर्नाद सुनाई देने लगा है तो उससे एक दिन तुम तुकाराम की तरह साधु हो जाओगे और पूरे आस्तिक बन जाओगे।" केशवसुत ने उत्तर दिया, "जैसे मैं अभी कविता से उत्कट प्रेम करता हूँ, शायद किसी दिन परमात्मा से भी करने लगूँ।"

केशवसुत की कविता से पता चलता है कि वे सर्वान्तर्यामी एक परमात्मा को माननें वाले हर व्यक्ति के समान एक दुविधा में फँसे थे : यदि परमात्मा प्रकृति में है और सर्व-प्रेममय है तो जीवन में इतना दुःख क्यों ?" शंकराचार्य के सिद्धान्त को मानकर जगत् और प्रकृति को माया मानने से या पो कवि की भाँति यह कहने से कि—

जो कुछ दिखता है या दिखाई देता है
वह केवल सपने के भीतर एक सपना है

बहुत सहायता नहीं मिलती। यदि कवि नास्तिक हो तो वह मूर्ति-भंजक और विद्रोही बन जाता है, जो कुछ हद तक केशवसुत थे। परन्तु उस युग और समय का कवि ध्वंसवादी नीत्शे या माइकौवस्की नहीं बन सकता था। उनके भीतर जो सहृदयता और कलात्मक संवेदन था उसके कारण वे एकदम सर्व-संशयवादी या अनास्थामय नहीं बन सके। वे एक प्रकार की अस्पष्ट श्रद्धा से चिपटे रहे—और शायद टैगोर की तरह, उन्होंने भी 'वन-वाणी' की ध्वनि सुनी थी, जिसमें अनन्त का मौन निमन्त्रण था।

प्रेम

श्री आत्माराम रावजी देशपाण्डे 'अनिल' ने नागपुर से प्रसारित एक रेडियो वार्ता में, जो 'तरुण भारत' में प्रकाशित हुई है, केशवसुत की प्रेम-कविता को अपनी श्रद्धांजलि निम्न शब्दों में अर्पित की है :

"मैं केशवसुत को मराठी में सच्ची प्रेम कविता का आरंभकर्ता मानता हूँ। उनकी कविता की आशय-अभिव्यक्ति का रूप अंग्रेज़ी कविता की तरह है, परन्तु कालिदास, भवभूति-जैसे प्रतिभावानों की कृति में प्रतीत होने वाले विशुद्ध प्रेम-काव्य के साथ उन्होंने मराठी कविता का सूत्र पुनः जोड़ा, ऐसा भी कहा जा सकता है। बीच के कितने ही शतकों में भारतीय समाज-व्यवस्था, परिस्थितियों से निर्मित वन्धनों से रुद्ध हो गई थी। युवा-युवतियों का निसर्ग-सिद्ध प्रेम, उनकी उभय हृदयों की भावना, प्रेम की परिणति का मिलन-विरह, ये सब बातें प्रतिष्ठित समाज से मानो निर्वासित कर दी गई थीं। व्यक्ति के महत्त्व की और वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भावना जैसे-जैसे पुनः विकसित होने लगी और सामाजिक रूढ़ बंधन तोड़े जाने लगे वैसे-वैसे प्रेम को पुनः समाज-जीवन में स्थान मिलने लगा। केशवसुत की प्रेम-कविता ऐसी प्रेम-भावना का उषः सूक्त है।

" 'प्रिया का ध्यान' नामक प्रथम प्रेम-कविता की रचना स्वानुभव पर आश्रित अंतर्मुख पद्धति की है। पत्नी-प्रेम को वे प्रेयसी के प्रेम के स्तर पर ले गए हैं।··· ध्येयासक्त, ध्यानजन्य प्रेम का पहला स्पंदन 'जहाज के किनारे समुद्र की शोभा देखती हुई एक तरुणी के प्रति' शीर्षक केशवसुत की कविता में मिलता है। इस कविता में—

तो वहाँ प्रीति
जब हमारी प्रबल होगी
तब प्रिये, तुम स्त्री बनना,
मैं तुम्हारा प्रियकर बनूँगा,
या सखे, मैं स्त्री बनूँगा,
तुम मेरा प्रिय पुरुष बनना

एक दूसरे को हम
सुदृढ़ हृदय-बंध में रखेंगे।

एक दूसरी कविता में—मित्र पूछता है—आगे क्यों नहीं बढ़ते ? तो कवि का वहाँ से पैर नहीं हटता है, तब—

सखा ने कहा—"मन में तू इतना क्यों डूबा है ?"
मैंने कहा—"अपने मन से पूछ।"
तब उसने पूछा—"कविता तुझे अटका रही है," "नहीं जी,
प्रीति मुझे मोहती है, हिलने नहीं देती।"

'प्रीति और तू' कविता में केशवसुत ने कहा है :

प्रीति विषय यदि किसी व्यक्ति के लिए पराया हो गया
प्रीति और तेरे सिवा मुझे कुछ भी नहीं सूझता

और 'रुष्ट सुंदरी' में :

तो उसका जन्म-हेतु समाप्त हो गया।

'प्रणय कथन' कविता में उन्होंने कहा :

जड़ हाथों की मर्यादित कृति में
जड़ातीत उस मन के भीतर की प्राप्ति कैसे होगी ?"

केशवसुत की प्रेम-कविता में एक रहस्यमयी अन्तर्धारा है, जिससे उसमें अपने ढंग का अनोखा आकर्षण पैदा हो गया है। वह कल्पना-लोक में भटकती है, वाद-लेयर की तरह, यद्यपि उसमें कीट्स की ऐंद्रिक बिंब-प्रधानता या वाइरन का रक्त-तत्त्व नहीं है। आ० रा० देशपांडे केशवसुत के रहस्यवाद को रोमांटिक नव्य-रहस्यवाद कहते हैं, क्योंकि वह रूढ़ 'अदृश्य और अज्ञेय के स्पर्श' से भिन्न है। आचार्य स० ज० भागवत ने उन्हें ऐसा 'दार्शनिक कवि' कहा है "जो जीवन के बारे में गहरा सोचते थे और जीवनानुभव की परीक्षा करने का साहस करते थे।"

केशवसुत की कविता का एक तृतीयांश प्रेम की विभिन्न छटाओं से संबद्ध है। यह प्रेम, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मुख्यतः अशरीरी है। चुंबन-आलिंगन के कहीं भी उल्लेख नहीं हैं। संस्कृत-कविता में उत्तान शृंगार था, मराठी लोक-कविता 'लावणी', जो केशवसुत से पूर्वकालीन थी, बहुत शृंगार-प्रधान थी। परंतु केशवसुत में एकदम अमूर्त्त प्रकार का प्रेम दिखाई देता है, उसकी सतरंगी

छटा करुणा के झीने पर्दे में से झाँकती है। केशवसुत अपनी प्रेम-कविता में मानो तर्क करते हैं : प्रेम दिव्य और स्वर्गीय है। उसके बीज हमारे हृदयों में पड़ते हैं। फूल और मालाएँ प्रिया के लिए हैं। प्रेम प्रेम से पैदा होता है। प्रेम बाज़ार में नहीं मिलता। वह कोई पण्य वस्तु नहीं जो खरीदी-बेची जा सके। यहाँ अनजाने केशवसुत कबीर के दोहे को दुहरा रहे हैं :

प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय
राजा परजा जेहि रुचे, सीस देय,ले जाय

प्रेम केशवसुत के शब्दों में 'पुष्पों की भाषा' है। अपनी प्रिया के साथ उसे निर्जन भी प्रिय है। अपनी कविता 'समृद्धि और प्रीति' में वे कहते हैं :

काँटे हटाऊँगा, पशुओं का वध करूँगा, किला बनाऊँगा,
मैं उसको सुख देने के लिए अपने प्राण भी दे दूँगा
हम वहाँ परस्पर को लता-जाल के समान बाँध लेंगे
पहले उस स्थान पर नरक में से स्वर्ग को बाहर निकालेंगे।

केशवसुत का प्रेम आदर्शीकृत, रोमांटिक स्वप्न-तत्त्व का बना है। वे कहते हैं कि प्रेयसी उसे अर्पित फूलों की याद से उन्हें क्षमा कर देगी। वे प्रेम की भीतरी सूक्ष्म छटाएँ, मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ाव वर्णित करना चाहते हैं। उनकी प्रणय की कल्पना केवल प्रिया और उसके पागल प्रेमी तक परिमित नहीं है। उनके प्रेम-विषयों में बच्चे और तारे, पुरानी स्मृतियाँ, देहाती लड़के, ठिठके हुए संध्या रंग, गुलाब कली और ली हंट की कविता 'जेनी ने मुझे चूमा' भी आते हैं।

केशवसुत की प्रेम-कविता में एक करुणा की अन्तर्धारा है। ऐसा लगता है कि वे बार-बार अपने प्रारंभिक जीवन के किसी प्रेम-भंग का उल्लेख करते हैं। उनकी प्रेम-कविता विरह के दुःख की अभिव्यंजना से विरहित नहीं है। यद्यपि यह कविता एडगर एलेन पो की 'गिद्ध' कविता पर आधारित है, फिर भी केशवसुत के 'उलूक' में कुछ बड़ी ही मार्मिक पंक्तियाँ हैं, जैसे :

जाओ, यहाँ से चले जाओ। मुझे रोने दो,
शोक से मेरा हृदय उबलने दो
मेरे कानों में अपनी आवाज़ न पड़ने दो
वह मेरे खिन्न मन पर निर्वेद का भार न लादे।

मेरे दुःख पर दाग न दे
यहाँ से तू जल्दी मुँह काला कर
घुग्घू "ऊँहूँ" प्रत्युत्तर देता है वह अधम।
निराशा ने मुझे पूरी तरह घेर लिया है
खिड़की के सामने से उल्लू हिलता नहीं है
घुग्घू, घुग्घू, उसका भीषण घृत्कार बाहर चल रहा है।

केशवसुत अपनी एक दूसरी कविता में 'मयूरासन और राजमहल' की तुलना करते हैं, जो दोनों एक ही सम्राट् ने बनवाये थे। कवि भौतिक वैभव के प्रदर्शन की अपेक्षा प्रेम पसंद करते हैं। मूल सॉनेट १३ नवम्बर १८९२ को लिखा गया था। वह इस प्रकार है :

काम दो अच्छे किये उस सम्राट् ने—मयूरासन
जिस पर बैठकर वह शोभित हुआ, उसमें छः करोड़ रुपये लगे
राजा लोग उसके आगे अपने दोनों हाथ जोड़कर झुके
वे कंपित हुए, यह मन में जानकर कि सम्राट् के हाथ में उनका सिर है
प्रेम से अपनी सखी के लिए उसने स्मृति-मंदिर भी बनवाया
तीन करोड़ रुपये खर्च किये, गंभीर यमुना-तीर पर।
लुटेरे उस सिंहासन को लूट ले गए। इतना ही याद रहा
परंतु वह अद्भुत ताजमहल अभी तक वहाँ खड़ा है
मत्त भ्रान्त मानव ! तेरी कृतियों का ऐसा ही अंत होता है
कितना ही धूप तुमने स्वार्थी प्रकृति के आगे जलाया
तो भी अपने मन में यह बात सदा याद रखो कि
उसका धुआँ ही बनेगा और वह खो जायगा।
एक ही गंध-युक्त अगरबत्ती, झुककर अगर प्रेम से तू जलायेगा
उसका परिमल सदा दुनिया में फैलेगा और वह संतोष देगा।

केशवसुत मराठी में इस विषय में भी अग्रणी हैं। वे मुक्त हैं, स्पष्ट हैं। नारी

के प्रति शारीरिक आकर्षण को भी वे अभिव्यक्ति देते हैं । केशवसुत से पहले, प्रणय-निवेदन अप्रत्यक्ष और अलंकृत या बहुत अधिक भड़कीला और नादमय था। केशवसुत ने इस विधा में भी भावगीतात्मक सुकुमारता निर्मित की। उनकी कुछ कविताएँ, जैसे 'प्रिया को दूर से याद करते हुए' आदि आधुनिक मराठी कविता में आरंभिक प्रेम-कविताओं में सर्वश्रेठ हैं।

सामाजिक विद्रोह

२७ मार्च, १९९६ को मुंबई-मराठी-ग्रंथ-संग्रहालय में बोलते हुए श्रीमती चारुशीला कुलकर्णी ने कहा कि यदि केशवसुत ने केवल तीन कविताएँ 'नया सिपाही' 'तुरहा' और 'स्फूर्ति'—लिखी होतीं, तो भी वे अमर हो जाते। वे कविताएँ, उनके विचार में महाराष्ट्र की तीन संहिताएँ हैं। निस्संशय, ये तीन कविताएँ, जिनके अनुवाद अंत में दिये गए हैं, बहुत जोरदार हैं, और उनमें ऐसे विद्रोह की भावना व्यक्त होती है, जो अब तक मराठी में अपरिचित था। उनसे यह भी व्यक्त होता है कि केशवसुत में एक चिर-जागरूक मानवतावादी उपस्थित था जो सब प्रकार की जीर्ण रूढ़ियों और जंग-लगी परंपराओं से लड़ना चाहता था। वह मनुष्य और मनुष्य के बीच में जाति, वर्ण या पंथ के कारण किसी भी भेद-भाव को मानने को तैयार नहीं था। उनकी उपलब्धियों की महत्ता उनके समुचित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखनी चाहिए।

जब केशवसुत का जन्म हुआ तब ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध १८५७ के सहज विद्रोह को एक दशक बीत चुका था। अब भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य को दैवी वरदान नहीं मानते थे। महाराष्ट्र में कई आन्दोलन चल गए थे जिनसे जनता में दासता के विरुद्ध चेतना जागी थी। जब केशवसुत पूना में पढ़ाई के लिए गए तो सारा वातावरण नारों से भरा हुआ था जिसमें 'मेरा देश, मेरा धर्म, मेरी भाषा !' का जय-जयकार गूँज रहा था। उनके मन पर, जो उस समय आकार ग्रहण कर रहा था, इस सबका गहरा असर पड़ा।

उनकी राष्ट्रीय कविताएँ १८९० तक लिखी गई हैं। उस वर्ष के बाद केशवसुत का राजनीति से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध हम नहीं देखते, न जीवन में, न साहित्य में। यह वह समय था जब महाराष्ट्र के कवि और विचारक इतिहास के द्वारा अपनी ज्वलंत राष्ट्रीयता व्यक्त कर रहे थे। वे सब अपने गौरवमय अतीत की कोरी प्रशंसा के ही गीत गाते। केशवसुत इस प्रकार के पुनर्जागरणपरक आत्म-संभ्रम में नहीं डूबे। जहाँ तक सामाजिक असमानताओं का प्रश्न था, वे दुखी हुए, उन्हें बेहद धक्का लगा और उन्होंने उन्हें किसी भी कीमत पर नष्ट करने के लिए अपनी आवाज़ बुलंद की।

उन्हें क्रान्ति का कवि माना जाये, या उत्क्रान्ति का, इस पर मराठी में आलोचक अलग-अलग मत रखते हैं। कुछ सोचते हैं कि वे अपने समय से बहुत आगे थे और अन्य लोग उन्हें 'एक क्रान्तिकारी प्रक्रिया का अंश मानते हैं, उसका निर्माता नहीं' (पटवर्धन), और अन्य आलोचक उन्हें निरा सुधारक मानते हैं। यद्यपि उन्होंने अपनी कविता में स्वतंत्रता, समता और भ्रातृ-भाव का समर्थन किया, फिर भी उन्हें राजनैतिक कवि नहीं कह सकते। अपने परिवेश के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अस्वीकृति की शैली में थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि कवि के नाते समाज पर उनका प्रभाव तिर्यक् और दुर्बल था।

उनका सामाजिक विद्रोह उस दूषित शिक्षा-पद्धति की आलोचना से शुरू हुआ जो बच्चों को छड़ी से पीटकर पढ़ाने में विश्वास करती थी। अप्रैल १८८९ में लिखे एक सॉनेट में, जिसका शीर्षक है 'बच्चे को मारने वाला शिक्षक', वे उस दुष्ट के प्रति अपना सात्विक क्रोध व्यक्त करते हैं :

ओ क्रूर आदमी ! किस मूर्ख ने तुझे यह शिक्षक-पद दिया ?
इससे तो तुम कसाई बनते तो अच्छा होता ?
वह काम तुम बेहतर करते
इस बच्चे को तुम इतनी निर्दयता से क्यों पीट रहे हो ?
मुझे बताओ उसने कौन-सा पाप किया ?

केशवसुत को शालाओं और शाला-मास्टरों का बहुत कटु अनुभव था और वे उनके विरोध में लिखते हैं।

उन्हें उस समय के भारत की दुर्दशा का बराबर ध्यान रहता था। उन्होंने अपना दुःख 'एक भारतीय के उद्‌गार' नामक १८८६ की कविता में व्यक्त किया है:

जैसे यह सूरज उगता है, वैसे क्या कभी
हमारे उत्कर्ष का सूर्य ऊँचा नहीं चढ़ा था ? कहो ?
परन्तु वह यहाँ से पश्चिम में रममाण होने चला गया
ह्रास की यह निबिड़ रजनी हमें तंग करने आ गया !

लताओ ! ये सुन्दर सुमन हमारे लिए क्या अर्थ रखते हैं ?
तुम्हारे मधुर गाने से, हे विहगो ! इन लोगों को क्या
मिलता है ?

परतंत्रता के कारण हमारे पास देखने को आँखें नहीं हैं
परतंत्रता के कारण हमारे पास सुनने को कान नहीं हैं।

इस प्रकार से इस लम्बी कविता में वे आगे लिखते हैं, जिसका अंत यों होता है :

हे ईश्वर ! यह परवशता की निशा समाप्त होकर
स्वतन्त्रता का द्युमणि कब उदित होगा ?
कब हम पंजर में से सहसा छूटेंगे, हे ईश्वर
हमारा देश फिर राष्ट्रत्व कब प्राप्त करेगा ?

कवि को स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि उसने जो कुछ स्वप्न देखा था वह ७१ वर्ष बाद सच निकलेगा।

दूसरी महत्त्वपूर्ण कविता ग्राम-जीवन और उसकी सरलता के गुणों की प्रशंसा में है। उसमें अपने दरिद्र जीवन से संतोष का महत्त्व बताया गया है और चमकीले पश्चिम के मोहक आकर्षणों के विरुद्ध चेतावनी है। १८८७ में लिखी गई 'एक देहात' नामक लम्बी कविता की कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं :

वहाँ ऊपर से सुन्दर महल नहीं हैं
परंतु एक सादा झोंपड़ी वहाँ है
महलों में रोग रहते हैं
झोंपड़ियों में रोग कहाँ रहेगा ?

रोग बड़े मिजाज वाला है
उसे गद्दियों पर लेटना पसंद है
झोंपड़ियों के कंबल पर उसे
पड़े रहना कहाँ पसन्द है ?

उस छोटे-से गाँव में झोंपड़ियों में
अच्छे कुनबी लोग रहते हैं
खेतों पर सदा सुख से मेहनत करके
सीधे अपनी गिरस्ती चलाते हैं

अहा ! ऐसे अज्ञात स्थान पर यदि मुझे
घास-फूंस की एक झोंपड़ी रहने को मिलती
एक खेत मेहनत करने के लिए मिलता
तो मेरे मन को कितना सुख होता

तो मुझे कोई धन से दरिद्री नहीं कहता
तो मुझे कोई शिक्षण से क्षुद्र नहीं कहता
तो मुझे स्वर्ग-सुख कम जान पड़ते
तो मुझे कीर्ति की कोई परवाह नहीं होती ।

कीर्ति क्या चीज़ है—एक पंख
जिसे लोगों के सिर पर चढ़ने के लिए
पक्षी को छर्रे खाने पड़ते हैं
वैसे भी बाद में वह झरने ही वाला होता है ।

कभी कोई अतिथि यदि घर पर आये
तो उससे कहता हूँ 'तुम्हारा ही घर है'.
उसकी दूर की कहानियाँ सुनकर
मैं मन में उस स्थान पर चकित हो जाता हूँ···

"इतनी बड़ी अथाह दुनिया है ।
उसमें इतना सारा ठाठ-बाट है ।"
ऐसा कहकर मैं उसे विस्मय से देखता हूँ ।
स्वस्थिति की दुनिया से तुलना नहीं करता ।

स्वर्गलोक में बहुत संपत्ति है
यहाँ उसका करोड़वाँ अंश भी नहीं है
इसलिए क्या दुःख से 'हाय-हाय' कहकर
यह धरा अपना भ्रमण छोड़ देती है ?

इस कविता में 'उजड़ ग्राम' (दि डेज़र्टेड विलेज) का चमत्कार और 'उपो-

द्घात' (दि प्रित्यूड) की-सी सरलता है, और अपने ढंग की एक भव्य उदात्तता।

श्री दिनकर केशव बेडेकर ने आधुनिक युग में महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जागरण की दार्शनिक पृष्ठभूमि के बारे में लिखा है : "रानडे और आगरकर में एक महत्त्वपूर्ण अंतर था : आगरकर की प्रकृति के प्रति ऐसी उत्कट आंतरिक भक्ति थी जो किसी भी पुराने-नये दार्शनिक में नहीं मिलती और जो रानडे को अपरिचित थी। यह उत्कट और उन्मादक प्रकृति-प्रेम जो केशवसुत की कविता में मिलता है और अधिक उत्कटता से 'बालकवि' (१८८९-१९१८) में पाया जाता है, वह महाराष्ट्र की दार्शनिक खोज की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। यदि आगरकर का निबंध 'प्रकृति निरीक्षण' ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसमें कई चीजें देखने को मिलेंगी।" (महाराष्ट्र-जीवन : संपादक : गं० बा० सरदार, पृष्ठ ६०)

इस प्रकार से यह गांधी जी की 'ग्रामों की ओर लौटो' पुकार का ही आरम्भ था। और जो बाद में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'माटीर डाक' में और हाली की 'उकता गया हूँ यारब दुनिया की शोरिशों से'-जैसी कविता में इतनी अच्छी तरह व्यक्त हुई। पहली दशाब्दी के कवि एक ऐसे नीड़ की तलाश में थे, जिससे उन्हें आध्यात्मिक सन्तोष और सांत्वना मिलती। एक प्रकार से यह रोमांटिक पलायनवाद कहा जा सकता है। परन्तु आल्डुस हक्सले ने अपने 'साध्य और साधन' (एण्इस एण्ड मीन्स) ग्रंथ में कहा है कि—'प्रत्येक पलायन एक प्रकार की पूर्ति भी होता है।'

और फिर भी केशवसुत में सब प्रकार के नागरीकरण के दबाव और सामंती व्यवस्था की टूटन की चेतना दिखाई देती है। 'तुरही' नामक कविता के दो कच्चे आलेखों के गहरे अध्ययन से दो बातें व्यक्त होती हैं। पहले आलेख में स्त्री-शिक्षा के समर्थन में, बाल-विवाह के विरुद्ध, विधवाओं के केश-वपन के विरुद्ध, विधवा-पुनर्विवाह तथा अस्पृश्यता-निवारण के लिए विद्रोही स्वर व्यक्त हुआ है। परंतु दूसरे सुधरे हुए आलेख में उन्होंने ये सब सीधे उल्लेख हटा दिये। कविता का स्वर फिर भी उपदेशात्मक और नीति-प्रधान रहा, परंतु वह सामाजिक सुधार पर पद्य-निबंध नहीं था। भ० श्री० पंडित लिखते हैं : "केशवसुत का मज़दूर लाल कॉमरेड नहीं था। १८८९ में जब उन्होंने यह कविता लिखी तब किसी भारतीय को कार्ल-मार्क्स का नाम भी नहीं मालूम था।" इस प्रकार से सामाजिक विद्रोह-सम्बन्धी केशवसुत की कविताओं में कवि के मन में यह मौलिक प्रेरणा दिखाई देती है कि

वह देश का सर्वांगीण विकास चाहते थे। उनकी प्रथम निष्ठा थी सौन्दर्यगत और काव्यात्मक मूल्यों के प्रति, परंतु एक नागरिक और सामान्यजन के नाते, अन्याय के प्रति संघर्ष करने की जिम्मेदारी से उन्होंने अपने-आपको नहीं बचाया। उन्हें इस बात का श्रेय देना चाहिए कि वे अन्ध-श्रद्धा और संकीर्ण राष्ट्रवाद के शिकार नहीं बने। वे 'राष्ट्रवादी' कविता लिखने के प्रलोभन में नहीं फँसे, जिससे उन्हें आसानी से बड़ी भारी लोक-प्रियता और शायद उच्चतर सामाजिक स्थिति भी मिल जाती। परंतु वे अपनी प्रतिभा के प्रति प्रामाणिक रहे।

अनुवाद

केशवसुत ने पश्चिमी साहित्य से न केवल भाव-गीत, संबोधन-कविता, सानेट आदि रूप लिये, वरन् उनकी कविताओं में अंग्रेज़ी के कई मुहावरों और सूक्तियों के अक्षरशः अनुवाद भी मिलते हैं यथा 'चेहरा पढ़ना' या 'मनुष्य ने मनुष्य का क्या कर डाला !' उनकी कुल १३२ कविताओं में से २५ अनुवाद हैं : चार संस्कृत से और शेष अंग्रेज़ी से।

संस्कृत से अनुवादों में केशवसुत की कोई मौलिकता या विशेष प्रतिभा नहीं मिलती। वे पद्यवद्ध रचनाओं का बौद्धिक व्यायाम-जैसी लगती हैं। 'रघुवंश' के सप्तम सर्ग के पाँचवें से बारहवें श्लोक के अनुवाद से उन्होंने अपनी काव्य-रचना आरम्भ की। उस समय गणेश शास्त्री लेले का सम्पूर्ण 'रघुवंश' का पद्यवद्ध अनुवाद उपलब्ध था। केशवसुत में कहीं-कहीं मूल की अर्थ-छटाएँ नहीं मिलतीं और कहीं-कहीं उन्होंने अपनी व्याख्या भी दी है। उनका दूसरा अनुवाद है भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' के प्रथम सर्ग के २६ श्लोकों का। यह पहले अनुवाद से कुछ अच्छा है। उन्होंने संस्कृत से दो सुभाषितों के भी अनुवाद किये, जिनमें से एक हास्य-रस का श्लोक है।

अंग्रेज़ी से अनुवादों में छै सानेट हैं : विलियम ड्रमण्ड का 'क्या दुनिया ऐसे ही चलती है ?' और 'प्रकृति के पाठ' ; श्रीमती एलिज़ावेथ बैरेट ब्राउनिंग का 'कर्म' और शेक्सपियर के तीन सानेट : 'अन्धा प्रेम', 'क्योंकि पीतल पत्थर नहीं' और 'मरणोपरान्त'। अन्य कविताएँ थीं टामस हुड की 'मृत्यु-शैया', एडगर एलेन पो की 'स्वप्न में स्वप्न', इमर्सन की 'क्षमा', विलियम स्कॉट की 'हज़ेलडीन का जौक', जॉन लाइली की 'क्यूपिड और कैम्पैस्पे' और ली हंट की 'रांदो'। यूरोप के कवियों में से तीन की रचनाओं के अंग्रेज़ी अनुवाद के आधार पर मराठी अनुवाद किया : गेटे की 'झाड़ी पर एक छोटा गुलाब', थियोफील गौत्रे की 'वर्फ़ की तरह सफेद तितलियाँ' और विक्टर ह्यूगो की 'छोटा नेपोलियन' (अन्तिम दोनों फ्रेंच कविताएँ तोरु दत्त के अंग्रेज़ी अनुवादों के आधार पर थीं)।

इनके अलावा तीन लम्बी कविताएँ हैं जो अनुवाद नहीं परन्तु निम्न तीन अंग्रेज़ी कविताओं के आधार पर रूपांतर या छायानुवाद हैं : एच. डब्ल्यू. लांगफैलो

की 'ज़ीने पर पुरानी घड़ी', ए. अॅ. पो की 'गिद्ध' और जॉन ड्राइडन की 'सिकंदर की दावत उर्फ़ संगीत का जादू'। मूल कविताओं की मुख्य कल्पनाएँ और रचना-बंध ही इन पुनर्निर्मितियों में पाया जाता है, मूल कविताओं का परिवेश, छन्द-रचना और वातावरण पूरा बदल दिया गया है।

डा० माधवराव पटवर्धन और प्रा० रा० श्री जोग-जैसे आलोचकों के अनुसार ये अनुवाद एक-से, अच्छे या उच्च स्तर के नहीं हैं। वे केवल यह दिखाते हैं कि मराठी कविता न केवल पश्चिम की विचार-शैली जैसे सर्वान्तर्यामी परम तत्त्व में विश्वास और उदारता से कैसे प्रभावित थी, वरन् उस भाषा के लिए अपरिचित पद्य-रूप भी उसने कैसे अपनाये। केशवसुत द्वारा मराठी में सॉनेट का प्रयोग एक मनोरंजक अध्ययन-योग्य विषय है। उन्होंने मराठी का पहला सॉनेट १३ नवम्बर १८९२ को लिखा जिसका शीर्षक था 'मयूरासन और ताजमहल'। वह १३ मई १८९३ की 'करमणूक' पत्रिका में छपा। उसे तब मराठी में चतुर्दशक या चतुर्दशपदी कहते थे और बाद में सुनीत। 'दुर्मुख' नामक एक ऐसी ही केशवसुत की सॉनेट-जैसी रचना है जिसमें १४ के स्थान पर १६ पंक्तियाँ हैं। केशवसुत ने शेक्सपियर और मिल्टन दोनों के सॉनेट-रूपों का प्रयोग किया है और उनकी यमक-रचना भी वैसी ही मूल के अनुरूप रखी है। पहले वे पहली १२ पंक्तियों के लिए एक छन्द और अन्तिम दो के लिए दूसरा छन्द प्रयोग में लाते थे। परन्तु बाद में उन्होंने उसी रूप को ज्यों-का-त्यों रखा, एक-सा छन्द पूरे सॉनेट में प्रयुक्त किया।

केशवसुत के इस प्रकार के अनुवाद में उनके मन की उदारता झलकती है। वे पश्चिम के छन्द-रूप और पद्य-विधाएँ स्वीकार करने, आत्मसात् करने और अपनी भाषा के अनुरूप ढालने को प्रस्तुत थे। सॉनेट जो एक बार मराठी छन्द-पद्धति में ढाल लिया गया वह मराठी भाषा में आ गया। केशवसुत के बाद कई कवियों ने सॉनेट लिखे और उनमें से कुछ लोगों ने तो सॉनेट-सरणियों में खंडकाव्य भी रचे। पश्चिम के काव्य-रूप जैसे ओड या सॉनेट या 'स्कायलार्क'-जैसी उत्प्रेक्षाओं की लम्बी मालिकाएँ आदि के लिए केशवसुत को ही श्रेय देना चाहिए, जो सच्चे प्रारम्भकर्ता थे। जो कार्य उन्होंने प्रेम और शौक से किया, वही बाद में अनुकरण का विषय बना। फैशन के रूप में और कहीं-कहीं एक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया गया।

नवीन प्रयोग

कोई भी कवि तब तक महान् नहीं माना जाता जब तक वह भाषा, पद्य-रचना या सम्प्रेषण की टेकनीकों में कोई सफल प्रयोग नहीं करता। प्रो० जोग ने केशवसुत के पद्य-रचना-विषयक प्रयोगों पर एक पूरा अध्याय लिखा है। उनके अनुसार केशवसुत अक्षर-छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्द पसंद करते थे। पुरानी दो या चार पंक्तियों की छंद-परिपाटी तोड़कर पाँच, छह या सात पंक्तियों वाले छन्द भी उन्होंने लिखे। एक ही श्लोक में उन्होंने लम्बी और छोटी पंक्तियाँ लिखीं। हिन्दी छन्द दोहा मराठी में मध्ययुगीन कवि मोरोपन्त के अतिरिक्त किसी ने नहीं लिखा था। केशवसुत ने उसे पुनर्जीवित किया। उन्होंने करीब-करीब मुक्तछन्द-जैसा भी लिखा। उन्होंने जो नहीं लिखी वह थी केवल अतुकान्त रचना।

केशवसुत से पहले कुछ छन्द-रूप परम्परा से मानो कुछ रसों के सुनिश्चित परिपाक के लिए बँधे हुए थे। केशवसुत ने इस रूढ़ि को तोड़ा और पहले सामान्यतः भक्ति के लिए या धार्मिक रहस्यवादी कविता के लिए प्रयुक्त छन्द-रूपों को यथार्थवादी सामाजिक विद्रोह के लिए भी प्रयुक्त किया। उन्होंने संस्कृत छन्द-रूपों के साथ स्वतन्त्रता बरती और कई वृत्तों का जाति की तरह प्रयोग किया, यानी परम्परित वर्णिक साँचों से वे बँधे नहीं रहे, बल्कि उन्होंने मात्राओं के आधार पर शब्दों की लघु-गुरु मूल्यवत्ता का प्रयोग किया। अपने कुछ गीतों में उन्होंने गीत की बँधी-बँधाई लीक की चिन्ता न करके, जान-बूझकर गीत के ध्रुव-पद या टेक को दुहराया, या किसी छन्द-पंक्ति को रसानुकूल लंबा भी किया। उन्होंने प्रास और यमक के प्रयोग भी किये : तुक वाली तीन-तीन पंक्तियों के बाद एक लम्बी पंक्ति जिसकी तुक भिन्न है। यह एक ऐसा छन्द-रूप है, जो उन्होंने 'तुरही', 'उलूक', 'झपूर्झा' आदि कविताओं में लिखा है। एक कदम और आगे बढ़कर, आधुनिक अंग्रेज़ी कवियों द्वारा प्रयुक्त ऐसी तुकों का भी उन्होंने प्रयोग किया जिन्हें पूर्वकाल में 'स्त्रैण' माना जाता था, और 'शिंग' का 'फुंक' से या 'हास्य' का 'मानस' से भी प्रास जोड़ा। प्रास या यमक के मामले में वे व्यंजन से अधिक स्वर के ध्वनि-रूप का अधिक ध्यान रखते थे। पुरानी दो-दो पंक्तियों की

परंपरित प्रास-युक्तता के वदले, उन्होंने फारसी ढंग की गज़ल-नुमा अ व, स व-जैसी दो पंक्तियों की यमक-योजना को महत्त्व दिया।

संक्षेप में, केशवसुत काव्य-रूपों के साथ सचेतन रूप से प्रयोग करने के लिए जो प्रस्तुत हुए, वह केवल पाश्चात्य आदर्शों के अनुकरण की अन्धी प्रेरणा से नहीं, परन्तु इसलिए कि उन्होंने अनुभव किया कि परंपरित छन्द-शास्त्र के वंधन, मुक्त काव्याभिव्यंजना का दम घोंटने वाले सिद्ध हुए थे। इस प्रकार उन्होंने मराठी कविता में कुछ रूढ़ियों की प्रतिष्ठापना की और उनके वाद कई कवियों ने लम्वे संवोधन-गीत और भावगीत उन्हीं रूपों में लिखे, ग़ज़ल-जैसी दो पंक्तियों वाली रचनाओं में सम-विपम प्रास-प्रयोग फैशन वन गया, और वाद में रवि-किरण-मंडल के कवियों ने उसका प्रयोग किया।

माधवराव पटवर्धन ने केशवसुत की आलोचना की है कि ये 'शब्दों को वहुत अधिक महत्त्व देने वाले कवि' थे। यह एक प्रकार से प्रशंसा भी है। कवि शब्दों के साथ कुछ ऐसा करते हैं जो अन्य कोई नहीं कर पाता। इसीमें कवि का जादू निहित है, और यहीं पर कहा जाता है कि कविता अननुवाद्य है। केशवसुत की कुछ रचनाएँ प्रथमतः शब्दों से सम्वद्ध हैं : वे भरसक शब्दों में से वासी और सुपरिचित अर्थ को निचोड़ डालना चाहते हैं, क्योंकि वे उनमें नया अर्थ विद्युतित करना चाहते हैं। इस दृष्टि से वे वड़े प्रयोगवेत्ता थे।

सामान्य मूल्यांकन

केशवसुत अति भावना-प्रधान और वहुत उत्कट कवि थे, और उनमें परिहास-भावना का प्रायः अभाव था, यद्यपि औरों के परिहास का आनन्द लेने की शक्ति थी। उदाहरणार्थ, उन्होंने व्वाइलो नामक फ्रेंच कवि की कुछ पंक्तियों का अनुवाद किया है :

यह संसार मूर्खों से भरा है, और जो
यहाँ किसी भी मूर्ख को देखना नहीं चाहता
वह न केवल अपने को बंद करके रहे अकेला,
वह अपना आईना भी फोड़ दे।

कवि को अर्पित आदरांजलि में, जो 'राष्ट्रवाणी' (मार्च-अप्रैल १९६६, पृष्ठ १५४) में प्रकाशित हुई है, प्रा० श्री० के० क्षीरसागर ने लिखा है : "वस्तुत : केशवसुत ने महाराष्ट्रीय मनुष्य के पूजा के विषय वदल दिए। यह सामान्य मनुष्य पहले या तो पंढरपुर के विठोवा के लिए तड़पता था या मृत वीर पुरुषों और पुराने दुःखों पर रोता था। प्राचीन कवि या तो राम या कृष्ण के वारे में लिखते या ईश्वर के लिए अपनी सच्ची या झूठी लगन व्यक्त करते। सामान्य मनुष्य का दैनंदिन जीवन एक अकाव्यात्मक विषय माना जाता था। कुछ कवि पश्चिमी कवियों की नकल में ऐसी कविताएँ लिखने का यत्न करते थे, परन्तु वे भी वहुत नीरस और वेजान रचनाएँ थीं। उनमें प्रामाणिकता की अपेक्षा हठाकृष्टता दिखाई देती थी। केशवसुत अकेले पहले कवि थे जिनकी भावनाएँ स्पष्ट, विविध और सच्ची काव्यमयता लिये हुए थीं।"

श्री मा० त्र्यं० पटवर्धन-जैसे आलोचकों ने केशवसुत पर विकृति, असामान्यता, कृत्रिमता, अप्रामाणिकता और अलंकारों के प्रयोग में दूरान्वय का आरोप लगाया है। यह वात सही है कि उनकी आरम्भिक कविता में कुछ अपरिपक्वता है और इस कारण से 'एक प्रभाव जमाने' की अप्राकृतिक आसक्ति उनमें मिलती है। परन्तु उनके समस्त कृतित्व के विषय में यह वात सही नहीं है। ऐसी वैयक्तिक आलोचना कि केशवसुत ने वहुत अधिक अध्ययन नहीं किया था, या वे सदा एक अध्यापक ही वने रहे आदि, अधिक मानी नहीं रखती। श्री ताटके के आक्षेप

के वारे में भी यही कहा जा सकता है, जव वे कहते हैं कि केशवसुत पाठकों में 'आत्मविस्मृति' पैदा नहीं करते। ऐसी आलोचना वहुत व्यक्तिनिष्ठ होती है। या यह कहना कि वे अपनी भापा में अंग्रेज़ी मुहावरे प्रयुक्त करते हैं या नये अपरिचित शब्द काम में लाते हैं; या कि वे निराशावादी हैं—यह सव वातें उनके समस्त कृतित्व पर लागू नहीं होतीं। प्रो० रा० श्री जोग ने अपनी पुस्तक 'केशवसुत' के अन्तिम अध्याय में ऐसे आलोचकों को विस्तार से उत्तर दिया है और युक्तिसंगत ढंग से यह सिद्ध किया है कि ऐसी वहुत-सी आलोचनाएँ पूर्वाग्रह-दूषित हैं और तर्क-संगत नहीं।

केशवसुत की कोई भी आलोचनात्मक प्रशंसा उनकी अनन्त के लिए रुझान और उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त रहस्यवादी 'आर्ति' के विना अधूरी है। यद्यपि वे अज्ञेयतावादी थे, क्योंकि उनकी कविताओं में कहीं भी देवी-देवताओं का सीधा उल्लेख नहीं है, फिर भी उनकी रचनाओं में एक गहरी आध्यात्मिक लगन संव्याप्त है—निस्सन्देह यह ब्रह्म-समाज या प्रार्थना-समाज के प्रभाव के कारण है। ऐसा प्रभाव मराठी कविता के लिए नया था। केशवसुत ने इस नये मानवतावाद के दर्शन को काव्यरूप दिया जिसमें वुद्धि की करुणा साम्य-आश्रित मनुष्य-केन्द्रित व्यवस्था से समन्वित की गई थी। कविता अव केवल ईश्वराश्रित या राजाश्रित न रहकर उसे 'यहाँ और अभी' नये आधार मिले थे। और फिर भी इस कविता के रथ का वंधन आदर्श के ध्रुव-तारे के साथ था: यह अपने दुःख के जगत् में से किसी सुदूर अज्ञात के प्रति लगन व्यक्त करती थी। और यही यात केशवसुत की कविता को सार्थक और सर्वात्म वनाती है।

केशवसुत में दूसरा गुण जो वार-वार हमें आकृष्ट करता है, वह है उनका वाल-सुलभ भोलापन। जहाँ-जहाँ वे वच्चों का या उनके विस्मय का वर्णन करते हैं, उसमें एक वड़ी ताज़गी की भावना है। ऐसा नहीं है कि उन्हें चारों तरफ की सर्व-संहारक हिंसा का और चारों ओर जमा होते जाने वाली कारागृह की छायाओं का भान नहीं है, पर वह निराश नहीं होते। उनकी सौन्दर्य-भावना सुदृढ़ और स्थायी है, वे अनावश्यक रूप से प्रेम को मरण, या करुणा को क्रूरता के विरोध में खड़ा नहीं करते। वे एक ऐसे कवि थे जो नीचे की हरी धरित्री और ऊपर के नीले आकाश से प्रेम करते थे और उससे अधिक कुछ नहीं चाहते थे। वे अपनी वैयक्तिक दरिद्रता या दुर्भाग्य की शिकायत नहीं करते। पर वे औरों के दुःख से चिंतित हैं।

यहाँ मैं स्वर्गीया कुसुमावती देशपांडे का एक और उद्धरण देने का लोभ संवरित नहीं कर पाता हूँ : "केशवसुत काव्य-प्रक्रिया की समस्या के वारे में मनन किया करते थे। वे अपनी स्वयं की काव्यमय मनोदशाओं के उतार-चढ़ाव और परिवर्तन स्वयं ध्यानपूर्वक देखते थे ; वे शब्दों की व्यंजना-शक्ति के विनाश पर शोक करते थे, सस्ते प्रतिदिन के ग्राम्य-प्रयोग के कारण शब्दों का विजड़ीकरण वे देखते जाते थे। वे कविता के प्रयोजन पर और प्रतिभा को प्रसन्न करने की पद्धतियों पर विचार करते थे। उनकी कुल १३२ कविताओं में वीस ऐसे विषयों पर हैं। आधुनिक मराठी कवियों में वे प्रथम थे जिन्होंने ऐसी समस्याओं पर विचार किया और उन्हें काव्यमय अभिव्यंजना दी। वे पद्य-रचना और काव्य के आकृति-वंध के प्रयोगवेत्ताओं में अग्रणी थे। उन्होंने कई तरह के छन्द एक साथ प्रयुक्त किये, एक साथ छोटी-वड़ी लम्वाई वाली पंक्तियों का उपयोग किया। उन्होंने पारम्परिक चार पंक्तियों वाले श्लोक को छोड़ दिया और कई नये छन्द-रूप गढ़े···केशवसुत की समस्त रचनाएँ एक छोटी-सी पुस्तक में हैं। परन्तु उनकी रचनाओं पर आलोचना-प्रत्यालोचना और वाद-विवाद-विषयक अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। केशवसुत की कविताओं का एक वृहद् संस्करण भी इस प्रकार से प्रकाशित किया जा सकता है। उनकी रचनाओं के राजवाड़े और रहाळकर-जैसे सहानुभूतिशील, विवेकी समालोचक भी हैं। और ऐसे भी आलोचक हुए हैं जो उनके अल्पपठित होने को और उनके अनगढ़ शिल्प को हेय भाव से देखते हैं। और कुछ आलोचकों की दृष्टि में वे अत्यन्त आत्मकेन्द्रित, उदास और अर्द्ध-भावुकतापूर्ण हैं। परन्तु केशवसुत की कविता का अन्तर्गुण वार-वार उभरकर आया है। उनके सर्वोत्तम कृतित्व की शक्ति, उसकी सच्ची मौलिकता और गहरी विचारशीलता को सव लोगों ने स्वीकार किया है। सवसे वढ़कर वे आधुनिक मराठी कविता के जनक माने गये हैं। उनसे ही आत्मनिष्ठता का प्रवाह शुरू हुआ—जीवन के प्रति वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं की अनिर्बंध अभिव्यंजना का, सत्य के मुक्त चित्रण का, सामाजिक गम्भीरता का और रहस्यवादी धारा का भी। आधुनिक मराठी कविता के रूप, शिल्प और आशय में क्रान्ति के प्रथम उत्स निर्विवाद रूप से केशवसुत ही माने जाते हैं।"

अब उनकी रचनाओं की कुछ वानगी देने के लिए प्रायः अक्षरशः, पंक्तिशः अनुवाद के रूप में उनकी कुछ प्रसिद्ध कविताएँ यहाँ दी जा रही हैं। यहाँ क्षमा-याचनापूर्वक निवेदित करना है कि कविता का अनुवाद कठिन है, विशेषतः आज

से पचहत्तर वर्ष पूर्व लिखी गई कविता का, चूँकि कविता का मुहावरा और रसास्वादन भी इस बीच कितना बदल गया है। परन्तु यह गद्यप्राय अनुवाद इसी आशा से प्रस्तुत है कि जो लोग मूल मराठी भाषा नहीं जानते, उन्हें न-कुछ के स्थान पर कुछ-न-कुछ सार के निकट का लाभ मिल सके। जो आगे है उसे आज के पाठक के द्वारा कविता के रूप में नहीं, परन्तु एक व्यक्ति ने, जिसे जीवन में उच्च शिक्षा या जीवन की नियामतें नहीं मिलीं, केवल प्रतिभा के बल पर, सात दशक पहले क्या उपलब्ध किया, इसी दृष्टि से पढ़ा जाये। उन्हें सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सन्दर्भ में ही देखना उचित होगा।

चुनी हुई कविताएँ

१. नया सिपाही
२. अछूत वच्चे का पहला सवाल
३. मूर्ति भंजन
४. मज़दूर की भुखमरी
५. स्फूर्ति
६. कहाँ जा रहे हो ?
७. दुर्मुख
८. प्रकृति ओर कवि
९. स्फुट विचार
१०. प्यास और भूख आरम्भ में नहीं थी
११. हम कौन
१२. तुरही
१३. झपूर्झा
१४. गाँव के गए हुए मित्र का कमरा देखकर

नया सिपाही

नवयुग का मैं नव दम-खम का शूर सिपाही हूँ,
कौन मुझे अपने बन्धन में रख सकता है, देखूँ !
ब्राह्मण नहीं, न मैं हिन्दू या एक पंथ का केवल,
वे हैं पतित कि जो संकीर्ण बनाते हैं सकलांचल!

भारी भीषण मेरी भूख,
टुकड़े से मुझको कब सुख,
नहीं कूप का मैं मंडूक;

मेरे खेत बँधेंगे बागड़ से न सहन मुझको यूँ !
कौन मुझे अपने बन्धन में रख सकता है, देखूँ !

जाऊँगा मैं जिधर कहीं हैं सभी ओर मेरे भाई,
सभी जगह निज घर के चिह्न मुझे देते हैं दिखलाई;
कहीं जाइये—सिर पर तो हैं अंबर की नीली झाँई !

छाया में बच्चे सुन्दर,
और धूप में फूल मधुर,
देख हर्ष से डोले उर,

वे मेरे, मैं उनका—एक प्रवाह बह रहा हम सबमें !
नवयुग का ताज़े दम-ख़म का शूर सिपाही हूँ अब मैं !
पूज रहा हूँ मैं किसको ?—तो अपने को पूज रहा,
अपने में ही विश्व देखकर पूज रहा मैं यह दुनिया;
'मैं' यह शब्द न मुझे चाहिए; लोग उसे संकीर्ण बना,
निज सिर पर अनर्थ खींचे लेते हैं यों ही नाना !

छोटा-बड़ा न मुझको सूझे,
साधु-अधम का द्वन्द्व भी झरे,
दूर-निकट का भाव भी भगे;

सब ही बड़ा-साधु-अतिनिकट, उसीमें भरा हुआ हूँ !
कौन मुझे अपने बन्धन में रख सकता है मैं देखूँ ?
'हलवा'[1] जब कि बनाते तिल पर चढ़ें चाशनी के पुट कण,
अहंस्फूर्ति के केन्द्र पर चढ़ें उसी तरह जड़ आवेष्टन;
अन्दर सम निर्गुण तिल, ऊपर सगुण जम रहा जैसे पाक
किन्तु अन्य के लिए चुभन के काँटे बनते हैं प्रत्येक ?

ऐसी स्थिति से हम जनमे !
कलह मिटेगा कब कैसे ?
चिंता साल रही मन में।

काल शांति-साम्राज्य स्थापना चाह रहा है जो,
उसका प्रेषित नव दम-ख़म का शूर सिपाही हूँ !

८ मार्च १८९८

अछूत बच्चे का पहला सवाल

अछूतों के बच्चे बड़े ही मज़े से
रास्ते के किनारे खेल रहे थे;
दूर से वहाँ पर विप्र गर्व से आया,
और उन मुग्ध बालकों को क्या कहने लगा——

१. महाराष्ट्र का एक चिरौंजी दाने-जैसा, संक्रान्ति के दिनों में घर-घर बनाया जाने वाला मीठा पदार्थ।

"हटो भागो दूर, महार के बच्चे !
चलो ! ये क्या अपने सिर के खेल लगा रखे हैं।
चलो ! जल्दी से ब्राह्मण को राह दो।
बच्चे भागे;——कौन वहाँ टिकता।

लेकिन उनमें भी एक वैसा ही खड़ा रहा;
उस दुष्ट ने अपनी लाठी उठाकर डाँटा।
कहा——"गधो ! तुम्हारी छाँह भी न पड़े।
दूर हटो ! वर्ना यह प्रसाद मिलेगा !"

तब वह एक बच्चा भी घर जाने लगा,
मन में वह यही सोच रहा था——
"अगर उस पर मेरी छाँह गिर भी जाती,
तो उससे उसे कौन-सी बाधा हो जाती ?"

घर पर जाकर उसने वही प्रश्न माता से पूछा;
तब उसे वह माता बेचारी कहती है——
"हम लोग नीच (जात के) हैं, और वे बड़े लोग हैं,
उन्हें देखकर हमेशा दूर हो जाना चाहिए।"
वह सीधे भाव से कह गई !——पर उसे इसका क्या पता
इस दुनिया में दूसरों को शोषित कर,
यानी पहले घोर पाप करके ही,
दुनिया पर मानव अपना प्रताप चलाता है !

३ सितंबर १८८८

मूर्ति भंजन

(अभंग)

मूर्ति फोड़ो, दौड़ो ! दौड़ो फोड़ो मूर्ति,
भीतर की सम्पत्ति खा जाओ !

व्यर्थ पूजा द्रव्य उन्हें चढ़ाकर
नाक घिसने से क्या लाभ ?

पहाड़ के हैं हम दुष्ट और तगड़े
हमें भी है चाह संपत्ति की ।

पहेली बुझाने बैठी है भूतनी
नहीं बूझने पै वो खा जायेगी ।

उसके मुख-विवर में हमें नहीं जाना है
इसीलिए करना है घटाटोप कष्ट ।

मूर्ति फोड़कर उसे जोड़ देंगे
पर बेचकर फेंक नहीं देंगे ।

जो बेचते हैं वे हैं हरामखोर
वे ही सच्चे चोर हैं, हम नहीं ।[१]

मज़दूर की भुखमरी

सूर्य भगवान धार पर पहुँचे
शाम के रंग भी सज गये,

---

१. जीवन की अन्तिम कविता

सब ओर मौज देखिये दिखाई दी; पर
मेरे ही उर में दुःख क्यों भरा है ?

सारे दिन आज कुछ भी नहीं मिला
मेरे हाथ एक भी कौड़ी नहीं लगी;
मैं मजूरी करके पेट भरता हूँ;
किसी ने आज काम नहीं दिया ।

ये महल बड़े अच्छे लगते हैं;
मेरे ही पिता ने ये नहीं बाँधे हैं क्या ?
मैं आज मर रहा हूँ भूख के मारे;
श्रीमंत नाच रहे हैं महलों में मजे से ।

उनकी हिर्स मुझे बिलकुल नहीं है,
मुझे मोटी रोटी भी काफ़ी है;
कष्ट में भगवान् ! मरने को तत्पर,
मुझे क्यों मारते हो, भूख से, इसलिए ?

सबको भगवान् ! तुम समान भाव से देखते हो
पर गरीब के लिए ही तुम ऐसे कठोर क्यों ?
कुछ को तुमने सु-ग्रास सदन्न दिया
सादा रोटी भी हमें क्यों नहीं मिल पाती ?

तिनके चोंच में रखकर अपने बच्चों के लिए
जा रहे हैं अहा ! पक्षी, सुख से घर की ओर
अपने बच्चे को यह दिखाकर गृहस्थिन
कैसे उसे कह रही होगी ?

"जैसे ये पक्षी घोंसले की ओर जाते हैं
मुँह में तिनका अपने बच्चों के लिए लेकर

अन्न लेकर उसी तरह तुम्हारा पिता
जल्दी ही आयेगा, रोओ मत !"

ओ लाड़ली ! और ओ लड़ैते बच्चो !
मैं तुम्हें मुँह कैसे दिखाऊँ ?
मैंने किसलिए जन्म लिया ?
जन्मते ही मैं मर क्यों नहीं गया ?

जनवरी १८८९

स्फूर्ति

भरपूर प्याला भर जाने दो, झाग उसमें से उछलने दो।
इसे पीते हुए इस दुनिया के रंग क्षण-क्षण बदलने दो।

हमारे भाग्य में तो यही मुसीबत लिखी है हमेशा बड़बड़ाने की,
दुनिया हमें पीने वाला कहती है, तो क्या परवाह है इसकी।

तो जिह्वा के बंधन ढीले करो तीखे इस पेय से
इसकी गर्मी से द्यावा-पृथ्वी द्रवित होकर मिल जायें वेग से !

हो करके फिर मन में मगन,
चाहे जिसका ध्यान करो,
जो सूझे सो गान करो;

सुनकर उनके शब्द, रूढ़ि के दास तुरत गुस्से से उबलने दो।
भरपूर प्याला भर जाने दो, झाग उसमें से उछलने दो।

सोम का रस वेदकालीन ऋषियों ने खींचा था,
उनका शेष हमें दो, जो पिपासु हैं उन सब हमको।
औचित्य के व्यर्थ के विवेक ! तुम चले जाओ, इस दुरवस्था ने
हमें घेर लिया है, इसलिए हम पीते हैं, मस्त होते हैं।
किसी युक्ति की नौका बनाकर हम व्योम-सागर पर जायेंगे,
उडुगण के रत्न इस गरीब धरती पर वहाँ से फेंक देंगे।

यदि हमें देवता रोकेंगे
तो हम उनसे खूब लड़ेंगे,
रत्ती-भर भी हार नहीं मानेंगे।

देव-दानवों को मनुष्य ने निर्मित किया, यह लोगों को सूचित नहीं करेंगे।
भरपूर प्याला भर जाने दो, झाग उसमें से उछलने दो।

पद्य पंक्तियों की लोहे की छड़ हमारे हाथों में विधि ने दी है,
वह जनता शीर्ष पर टिकाकर हम सारी दुनिया को उलट-पलट देंगे।
क्रांति का झंडा ऊँचा करेंगे सब तरफ हल्ला मचा देंगे—
इस अन्याय और जुल्म के हम टुकड़े-टुकड़े कर देंगे, देखो।
'महादेव ! हर-हर !' समर-गर्जना हवा में गूँज रही है
वह हमारे कानों में अनुगूँज भर रही है—
"जो सोते हैं वे मर जाते हैं।"

उठो ! उठो ! कमर कसो !
मारो या लड़ते-लड़ते मरो !
सत्व का 'उदयोऽस्तु' करो !

छंद फंद उच्छृङ्खल हैं हमारे, चकित दुनिया को मथ डालने दो।
भरपूर प्याला भर जाने दो, झाग उसमें से उछलने दो।

बंबई, २३ मई, १८९६

कहाँ जा रहे हो ?

"कहाँ जा रहे हो ?"·····"चीनी खरीदने;
अमुक सज्जन के पुत्र हुआ है,
इसीलिए अब इष्ट मित्रों में बाँटने
उन्हें बहुत-सी शक्कर चाहिए।"

"कहाँ जा रहे हो ?"·····"फूल लाने को;
फलाँ राव के यहाँ विवाह है
वधू-वर परस्पर गले में डालेंगे
ऐसी मालाएँ उन्हें गूँथनी हैं !"

"और तुम कहाँ ?"·····"नवीन पसारा यह
गृहस्थी का अब मैं जमा रहा हूँ ;
इसलिए बाज़ार करने जा रहा हूँ;···
घर पर प्रिया राह देख रही होगी ?"

"और तू रे ?"···"जा रहा हूँ बुलाने
वैद्य बाबा को, अमुक वृद्ध के लिए
उन्हें वायु हो गया है !"···"जाओ ! प्रेत-वस्त्र भी
खरीद लाना और तू गोबर के कंडे ले आना।"

फिर सामने से एक शव आता हुआ दिखाई दिया।
"कहाँ जा रहे हो बाबा, बताओ अब ?"···
हवा में से ये शब्द गिर रहे थे मानो
"कहाँ जा रहा हूँ यह मुझे मालूम नहीं !"

१२ जून, १८८९

दुर्मुख

(कक्षा में एक अध्यापक के 'दुर्मुख' कहने पर मुझे लगा)

हे गुरु ! मेरा मुँह सचमुच शुष्क है, उसे देखकर
दर्शक सब चित्र में विरस हो जाते हैं;—
यह सबके लिए स्पष्ट है फिर भी आपने ऐसा क्यों कहा ?
उससे आपको कौन-सा भूषण संप्राप्त हुआ ?

"इसका मुख है कुरूप, पर वह, विधि चाहे, नवकाव्य लिखेगा,
जिसको पढ़कर हर्षित होगी मही और डोलेंगे जन-जन
विद्या-संस्कृत तुम्हारे मस्तिष्क-तन्तुओं में यदि क्षण-भर
यह विचार आता तो कितना भला होता।

मन में जिन्हें चींटी जैसे समझते हो, उन्हीं लोगों में से
पक्षी बनकर वे उड़ेंगे, हे गुरु ! व्योम में पता नहीं कब ऊपर
राख के ढेर जो दिखाई देते हैं, वे कल इस दुनिया को
भस्मसात् नहीं करेंगे, ऐसी हामी आप दे सकते हैं ?

इस दुर्मुख के मुख से ऐसा वहने वाला है भविष्य में
सुन्दर सरस वाङ्मय निष्यन्द कि चारों ओर प्रवाह विलक्षण
तुम ही नहीं तुम्हारे वंशज पीकर उसे अघा जायेंगे
कोई भी तब नहीं कहेगा—कविवर का कैसा था आनन ?"

१८८६

प्रकृति और कवि

वयस्य, यह प्रकृति मृदु घनरव से गा रही है
उसके आगे मैं पामर क्या गा पाऊँगा !
जब वह श्रुति-सुभग पक्षी-कूजन गाती है
तब मैं ये अ-रसपूर्ण कविताएँ अपने मुँह से क्या गाऊँ !

पावस के मिस जब प्रकृति इतनी ज़ोरों से रोती है
किसकी कविता में शक्ति है कि वह ऐसे आँसू ढाले।
निशीथ में प्रकृति जैसे मृदु-मलयोच्छ्वास लेती है
किस कवि की रचना ऐसे निसाँस छोड़ सकती है !

अक्तूबर १८८६

स्फुट विचार

विश्व का विस्तार कितना है
अपनी-अपनी खोपड़ी जितना है।

●

प्रकृति का केन्द्र कहाँ है
अपने-अपने हृदय में है।

●

हम अपने नहीं थे बाप
व्यर्थ क्यों फिर पश्चात्ताप ?
आँसू नैनों में ना लायें
एक दिन मर जायें

●

हमारा प्याला दुख का है
आँख मूँदकर पीना है
पीते हुए तलछट दिखाई देता है
उसका नाम है अनुभव !
उसे दुनिया पर उलटे फेंक दो
वही किसी के लिए अमृत हो जाये !

●

जो शाला में सीखा
उसमें यह टिप्पणी अध्याहृत थी :
"द्वितीय पुरुष में वह काम में लाओ
प्रथम पुरुष में वह छोड़ दो !"

१८९८

प्यास और भूख आरम्भ में नहीं थी

(अभंग)

प्यास और भूख आरम्भ में नहीं थी
अन्न और मुख थे एक ही जगह;
काम का विषय दूर नहीं था,
नर और नारी एक ही देह में थे;
तब तो नहीं थे हाथ और पाँव
उन्हें करना भी क्या था तब ?
स्वर्ग और पृथ्वी मिली हुई थी
कोई भी चिन्ता न थी उसके कारण ।

१८९८

हम कौन ?

हम कौन हैं यह क्या पूछते हो ?···हम हैं लाड़ले
ईश्वर के, उसने यह सारी दुनिया हमें खेलने को दी;
विश्व में हम उसी प्रतिभा के बल से चारों ओर लीला करते घूमते हैं
दिक्काल से आर-पार हमारी दृष्टि देख सकती है !
सारे ये पसारे यहाँ हमारे आगे फीके हैं;
हमारे हाथ का स्पर्श ही वस्तुओं को दे सकता है
सौंदर्यातिशयता, ऐसा इन हाथों में जादू बसता है।
जब आप भूसा छाँटते हैं, हम उसमें का सत्व बीन लेते हैं।

शून्य में देवताओं की वस्तियाँ किसने बसाई हैं ?
पृथ्वी को सुरलोक समान बनाने में कौन यत्नशील है ?
वे हम ही हैं जिनकी कृतियों में से सदा अमृत झरता है
वे हम ही हैं जिनसे शरण्य और मंगल आपको मिलता है
हमें हटाया तो सारे तारे और आकाश गतप्रभ हो जाएँगे
हमें हटाया तो यह ज़िंदगी कौड़ियों के मोल भी नहीं बिकेगी।

फैजपुर, २९ नवम्बर, १९०१

तुरही

एक तूर्य दो मुझको लाकर
फूँकूँगा जो निज प्राणों से
सारे गगन भेद जायेंगे
दीर्घ चीख से जिस तुरही की
ऐसी तुरही लाओ सत्वर

अन्तरिक्ष के सूनेपन में
प्रतिध्वनियाँ जो मूक आज तक
वे सब होंगी मुखर अचानक
फूँक ज़ोर से भरते भरसक
कौन तूर्य वह देगा मुझको?

सारंगी, या सितार सुन्दर
वीणा, बीन व मृदंग वाजा
सुर शहनाई के, अलगोजा
ये सब काम नहीं आयेंगे
एक तूर्य दो मुझको लाकर

रूढ़ि और अन्याय भयानक
इनकी सन्तानें सब तुमको
फाड़ खायेंगी, यह हतवेला
क्या जलसों की ? पूछो मन से
इसी तूर्य से सावधान हो।

कितना घन-डंबर घहराया
रविकिरणों का चूर हो गया
बौर सभी जल गया, झर गया
फसलों पर कीटाणु छा गया
फिर भी गाफ़िल सोई दुनिया

चमत्कार ! "वे पुराण सारे
सुन्दर,उज्ज्वल, महान, मीठे",
"सब कुछ नये बहुत ही खोटे"

कहते हैं जो तोंद बढ़ाकर
ऐसे मूर्खों को धिक्कारें।

पुराण नभ में टटके तारक
जीर्ण धरा पर नई ताज़गी
जीर्ण समुद्र नवीन रत्न दे
पुराण में से निष्पत्ति नई
क्या न यही है श्रेयस्कारक?

मरने दो सब जीर्ण पुराना
उसे जला दो या दफ़ना दो
मत उसको सड़ते रहने दो
सावधान ! आगत पुकार सुन
चलो मिला कंधे से कंधा

प्राप्तकाल है विशाल भूधर
सुन्दर शिल्प उसीमें खोदो
अपने नाम उसीमें लिख दो
बैठे हो क्यों मेद बढ़ाते
चलो करो कुछ विक्रम, सत्वर।

किसका बंधन, व्यर्थ अटकते।
पूर्वज बोले रुचा जो उन्हें
सुन लो सब-कुछ सादर मन से
परंतु आगे बढ़ो अशंकित
उनका सुन सन्देश ध्यान से !

प्रकृति निर्मम, नहीं मुरौअत
उसे कभी भी कहीं किसी की
उसकी काल संग जो क्रीड़ा
वह तो सबको समान भयप्रद
चूर करे जो प्रचंड पर्वत।

उनसे भिड़कर, शीघ्र झगड़कर
गढ़ो उच्च अपनी मीनारें
खंडहर में क्यों कथा बाँचना ?
कायर बन रोते बच्चों-से ?
पुरुषार्थ न गिरना रुक-रुककर

संघशक्ति की भू में खंदक
चौड़े होते, सौ-सौ टुकड़े।
स्वार्थ-शून्य प्राणों से अपने
उन्हें पाटना होगा सत्वर
कूद पड़ो उनमें तुम बेशक

प्रिय प्राणों का असिधाराव्रत
रोयें चाहे विधवा, बच्चे
गत शतकों के घोर पाप रे
क्षालन करने को दो शोणित
शोणित दो ! तुम स्त्रैण बनो मत !

नाम डूबता घोर विलय-पथ
और बने तुम मोम मेमने
हाय ! घोर घिर आया है तम
मत घबराओ होकर दिग्भ्रम
वीरों को प्रसंग दे हिम्मत

धर्म बना जाता आडंबर
नीति मार्ग में लाता वाधा।
यही भूल जाते हैं पागल
जहाँ नीति का पद है अविचल
धर्म वहीं पर होता है स्थिर

हमला करने इसी दंभ पर
शूरो ! जल्दी आओ जुटकर
समता का झंडा ऊँचा कर
नई नीति की दुंदुभि पीटो
इस तुरही में मिला-मिला स्वर

नियम मनुज के लिए, न मानव
नियमों के हैं लिए, जान लो
प्रगतिमार्ग में जो हों बाधक
उन्हें फेंक, अपनाओ बाना
स्वयं ओज से पूरित अभिनव

घातक झूठे प्रतिबंधों पर
हमला करने करो त्वरा तुम
उन्नति की ध्वज ऊँची रखने
वीरो ! तुम सावेश बढ़ो अब
वीर गर्जना करते "हर ! हर !!"

अतीत से आज तक सुरासुर
तुमुल जहाँ संग्राम कर रहे,
संप्रति दानव बहुत बढ़ गए

देवों पर निज विजय बताते !
देवों की हम मदद करें, चल !

बंबई, २८ मार्च, १८९३

झपूर्झा[1]

(हम लोगों को कुछ नहीं जान पड़ता है, उसीमें से महात्मा जन जगत्-कल्याण की वस्तुएँ बाहर निकालते हैं। महात्माओं की यह स्थिति ध्यान में रखकर आगे का गाना पढ़ने से, वह दुर्बोध नहीं होगा, ऐसा मानता हूँ)

हर्षखेद वे अस्त हुए
हास्य निमीलित
अश्रु पलायित
कंटक शूल मोथरे हुए
मखमल के रोंएँ जैसे;
कुछ न दृष्टि को कहीं दिखा
प्रकाश मिटता
तिमिर खो गया
इस स्थिति को क्या कहें भला ?
झपूर्झा ! प्रिय, झपूर्झा !

हर्ष-शोक यह जो सबका

---

१. इस शब्द का मूल में भी कोई अर्थ नहीं है। यह नादानुकरणात्मक शब्द है। श्रावण में लड़कियाँ बाल खोलकर गोल-गोल सिर घुमाकर, एक तरह का नाच करती हैं जिसमें वे कहती हैं—'ज़ा पोरी ज़ा'- (जाओ छोरी जाओ !) उसीका तेज़ बोलने से रूप बनता है 'झपूर्झा।' कविता पर गद्य टिप्पणी मूल कवि की है।

क्या वे समझे ?
क्या वे बूझे ?
यदि हँसते हों वे हम पर
तो कहने में यह क्या है डर—
व्यर्थ में अधिक ही अर्थ भरा

जो उसे दिखा
वह था पगला
उन अर्थों के बोल बता !
झपूर्झा ! प्रिय, झपूर्झा !

ज्ञेय मात्र की बागड़ से
रखकर धीरज
उड़ती ऊपर
चिद्घन-चपला जाती हैं
नाचती वहीं चमचम करतीं
धुँधली आकृतियाँ दिखतीं,
वे गाती हैं
निगूढ़ गीती
उस गीति से ध्वनि निकले···
झपूर्झा ! प्रिय, झपूर्झा !

जोते बिना ज़मीन भली
ऐसे कितने
खेतीहर हैं
सनद वहाँ है किसके पास !
हज़ार में हो शायद एक !

तो न यहाँ से वन-माला
लाने पर (क्षण)
तुम पर बंधन
सिर्फ मंत्र यह गाते जा
झपूर्झा ! प्रिय, झपूर्झा !

उसी पुरुष से रम्य अति
नित्य प्रकृति
क्रीड़ा करती
स्वर-संगम उस क्रीड़ा का
पहचाने यह हेतु ज्ञान का
वही ज्ञान की सुन्दरता
चित्त के लिए
ज्ञात हो सके
अब सप्रेम पहेली या
झपूर्झा ! प्रिय, झपूर्झा !

सूर्य चन्द्र एवम् तारे
नाचे सारे
जो प्रेम भरे
तोड़ें ख-पुष्प औ' विचरें
यदि जाना है वहाँ अरे
ज़रा बनो निस्संग, चलो
गोल-गोल यों
शीश घुमाओ
नाचो डूबो कहो कहो···
झपूर्झा ! प्रिय, झपूर्झा।

जुलाई १८९३

गाँव को गये हुए मित्र का कमरा देखकर

यहाँ रहता था मेरा स्नेही
जो स्नेहियों के लिए ही जीता था
जो (परतंत्रता के) बंधन तोड़ना चाहता था
स्वदेश के बंधन में जिसने अपने को बाँध लिया।

इस बंधन के बिना कहीं कुछ नहीं है
बंधन के लिए ही यह सब-कुछ चलता है,
बंधन से सुन्दर तारे छूट जायें तो
उनका तेज सारा बुझ जाता है।

चन्द्र सदा पृथ्वी के पास पाश में
रहकर ही सूर्य की सेवा करता है।
यदि वह ऐसा कर सके तो करके देखे
सूर्य की सेवा वह मज़े से स्वतंत्र होकर करे

पत्नी-पाश की आशा छोड़कर
स्वदेश-सेवा के लिए जो कटिबद्ध हुआ
वह मेरा सखा अपने गाँव गया है
इस कमरे पर ताला लटका है।

यहाँ हम लोग बैठकर गप्पें लड़ाते थे
विद्याध्ययन भी वहाँ करते थे;
मित्रता का बीज यहाँ बोकर
मैत्री की लता यहाँ सहवास से हमने बढ़ाई।

देश के बारे में यहाँ बातें करते हुए
कई बार नींद भी भूल गये, बैठे रहे,

तब हमारी साँस साँसों में मिलीं
आँसुओं में आँसू एकाकार हुए।

ऐसे ही कब उषा आई
पक्षियों के मुख से प्रभाती गाने लगी,
हवा मंद-मंद शीतल चलने लगी
प्रभा के प्रभाव में अँधियारा पिघल गया।

तब हमने कहा—"यह ह्रास की
रजनी कब सचमुच मिट जायेगी ?"
स्वतंत्रता का सबेरा कब आयेगा
उत्कर्ष का दिन वह कब सूचित करेगा ?

"इन आँखों से वह उषा देखने का
क्या इस अभागे के भाग में लिखा होगा ?
या उसे लाने के कुछ यत्न
हमारे हाथों से भी हो सकेंगे ?"

अस्तु, इस तरह हमने अनंत प्रश्न
पूछे। दुखी होकर। एक दूसरे से।
"जहाँ चाह है वहाँ राह है !"
इस वचन ने हमारे चित्त को धैर्य दिया।

अब कहाँ होगे, ओ मेरे मित्र !
क्या-क्या काम कर रहे होगे ?
देश के लिए शरीर अर्पण करने की
प्रेरणा क्या किसी को दे रहे होगे ?

तुम्हारा यह कमरा बंद देखकर
विरहाग्नि से चेतःकंद झुलसता है

पुनः हम यहीं मिलेंगे, ऐसी
आशा होती है और जलधारा बरसती है ।

(श्लोक)

उसके अस्त होने पर, कमल को देखकर लगा
"कल 'मित्र' निज-कर से इसे खोलेगा,"
ऐसा कहकर जिस तरह से भ्रमर श्रम से दूर चला जाता है,
उसी प्रकार से इस स्थान पर कहकर हे मित्र! मैं घर लौटता हूँ ।

मई, १८८७

परिशिष्ट

केशवसुत विषयक वाङ्मय-सूची[1]

केशवसुत की रचना :

१. केशवसुत यांची कविता : संग्राहक, हरी नारायण आपटे, १९१७
२. कृष्णाजी केशव दामले यांचा कविता-संग्रह व चरित्र : संपादक सीताराम केशव दामले
३. केशवसुतांची कविता, (आवृत्ति चौथी) : संपादक : परशराम चिंतामण दामले, १९३८
४. केशवसुतांची कविता (आवृत्ति पांजवीं) : संपादक : परशराम चिंतामण दामले, १९४९
५. हरपले श्रेय : संपादक : रा. श्री. जोग, १९५६

ग्रन्थ तथा स्फुट लेख :

६. केशवसुत आणि त्यांची कविता : न. शं. रहाळकर, १९१९
७. तुतारीची पडसाद : श्री. वि वर्तक, १९१६
८. केशवसुत (काव्य-दर्शन) रा. श्री. जोग, १९४८
९. केशवसुत : चरित्र, चर्चा अभ्यास : संत-गाडगिळ
१०. केशवसुत चरित्र विषयक टिपणे : शं. का. गर्गे—'रत्नाकर', फरवरी १९२६
११. केशवसुत चरित्र विषयक टिपणे : : शं. का. गर्गे — 'रतनाकर' नवम्वर-दिसम्वर १९३०
१२. केशवसुत चरित्र विषयक टिपणे : शं. का. गर्गे—'रत्नाकर' फरवरी १९३१
१३. केशवसुत—मृत्युलेख—'काव्यरत्नावली', दिसम्वर १९०५
१४. केशवसुत—चरित्र लेखन—'काव्यरत्नावली', अंक पहला १९१७

---

१. महाराष्ट्र सरकार से प्राप्त तथा गोपाल रामचन्द्र परांजपे द्वारा संकलित।

१५. केशवसुत—चरित्र—लेखन—सी. के. दामले 'केशवसुतांची कविता' संस्करण २, ३, ४
१६. केशवसुत—चरित्रलेख— श्री. ह. अत्तरदे—'यशवंत', जनवरी १९४५
१७. केशवसुत आणि विनायक—भी. गु. चिक्केरूर 'यशवंत' अप्रैल १९४५
१८. मराठी काव्याची उत्क्रांति व केशवसुत : वा. अ. भिडे, 'काव्य चर्चा', पृ० २०४ से २१९
१९. केशवसुत आणि क्वीचा व्यापार—प्रा.र.प. सबनीस—'काव्य चर्चा'. पृ० २२० से २२७
२०. केशवसुत—श्री. साधुदास 'काव्य चर्चा' पृ. २२८ से २३१
२१. केशवसुत व टिळक : प्रा. वा. गो. मायदेव—'काव्यचर्चा' पृ० २३२ से २४६
२२. केशवसुत—ग. त्र्यं. माडखोलकर—'आधुनिक कविपंचक' पृ० ५३-८४
२३. केशवसुत—ग. त्र्यं. माडखोलकर—'काव्य विचार' पृ० १ से १४
२४. केशवसुत—गेल्या साठ वर्षांतील मराठी कविता—ग. त्र्यं. माडखोलकर 'अर्वाचीन मराठी साहित्य'
२५. केशवसुत—रा. श्री. सरवटे—'मराठी साहित्य समालोचन' पृ० ४० से ५७
२६. केशवसुत—वि. सी. सरवटे—'मराठी साहित्य समालोचन' पृ० २१३ से २२३
२७. केशवसुत—दा. न. शिखरे—'मराठीचा परिमल' खण्ड २ पृ. ५२५ से ५६१
२८. केशवसुत—वि. पां. दांडेकर—'मराठी साहित्याची रूपरेखा', उत्तरार्ध पृ. ५५ से ६५
२९. केशवसुत—अ. ना. देशपांडे 'आधुनिक मराठी वाङ्मयाचा अितिहास' भाग पहला
३०. केशवसुत—भ. श्री. पंडित—'आधुनिक मराठी कविता' पृ. १४०
३१. केशवसुत—माधवराव पटवर्धन—'अर्वाचीन मराठी वाङ्मय-

'सेवक' प्रथम खंड पृ. ९८ से १७५

३२. केशवसुतांच्या काव्यदृष्टीतील अुत्क्रांती] कुसुमावती देशपांडे
३३. नवा शिपाअी (रसग्रहण) } 'पासंग' (टीकात्मक
३४. आम्ही कोण (रसग्र हण)] लेखसंग्रह)

३५. केशवसुतांची कविता—प्रि. वै. का. राजवाडे—'मनोरंजन' जुलाई सितम्बर अक्टूबर, नवम्बर १९२०

३६. केशवसुत—प्रा. मं. वि. राजाध्यक्ष ('पाच कवि'—सं. राजाध्यक्ष),

३७. केशवसुत—डा. दा. गुणें—मनोरंजन, अक्टूबर १९१७

३८. 'झपूर्झा आणि म्हातारी'—श्री. म. वर्दे—'मनोरंजन' जनवरी १९२०

३९. केशवसुताची राष्ट्रीय कविता—ना. म. भिडे, 'मनोरंजन' नवम्बर १९२५

४०. केशवसुतांचे अंतरंग—वि. कृ. आंबेकर—मनोरंजन मार्च १९१८

४१. केशवसुत यांची कविता—ना. म. भिडे—'विविधज्ञान विस्तार', अंक ६ जून १९१९

४२. केशवसुतांची अभिनव काव्य-रचना—रा. कृ. लागू—नवयुग, अक्टूवर, नवम्बर १९२१

४३. केशवसुतांचा सांप्रदाय—ग. त्र्यं. माडखोलकर—नवयुग, जुलाई १९२१

४४. केशवासुतांचा सांप्रदाय—अे. या. निफाडकर—'नवयुग', अगस्त—सितम्बर १९१९

४५. तुतारी वाड्.मय व दसरा—वि. स. खांडेकर—'नवयुग' अगस्त—सितम्बर १९२९

४६. केशवसुताचां परंपरेविषयीं कांहीं त्रोटक विचार—प्रा. श्री. बा. रानडे—'महाराष्ट्र साहित्य' अगस्त व अक्टूबर १९२३

४७. केशवसुत (काव्य)—रा. श्री. जोग—प्रदक्षिणा १९४९

४८ केशवसुतांची कविता—प्रि. वा. ब. पटवर्धन—'रत्नाकर' जनवरी १९२६

४९. केशवसुतांची कविता—वा. कृ. ताटके—'मनोरंजन', दिसम्बर

५०. केशवसुताच्या कवितेचा अभ्यास—अ. म. जोशी—'सह्याद्रि' सितम्बर १९४०

५१. कवि केशवसुत (अेक वाजू)—ह. श्री शेणोलीकर—फ. कालेज मैग. सितम्बर १९४०
५२. नव्या युगाचा काव्यप्रणेता—अ. ह. जोशी—फ. कालेज मैग.
५३. अभिप्राय (केशवसुतांची कविता)—श्री. न. चिं. केळकर 'केशवसुतांची कविता' संस्करण चौथा
५४. केशवसुत—ना. के. वेहरे—'केशवसुतांची कविता' संस्करण चौथा
५५. काव्य आणि क्रांति—आ. रा. देशपांडे—'अभिरुचि' सितम्बर, अक्टूबर १९४४
५६. केशवसुतांची कविता—आचार्य भागवत—'सत्यकथा' फरवरी १९४८
५७. केशवसुत—लालजी पेंडसे—'सत्यकथा' फरवरी १९४८
५८. केशवसुत—प. चिं. दामले—'युगवाणी' नवम्बर १९४७
५९. तुतारीचे पडसाद—त्र्यं. सी. कारखानीस—'नवभारत' जनवरी १९५१
६०. केशवसुत (कांहीं विचार)—प्रा. वा. ल. कुलकर्णी—'साहित्य' अक्टूबर १९४७
६१. कविश्रेष्ठ केशवसुत—मनोहर देशपांडे 'रोहिणी' अप्रैल १९४९
६२. पुन्हा केशवसुत—वसंत कानेटकर—'साहित्य' मई १९५०
६३. केशवसुत आणि तांबे—श्री के. क्षीरसागर—'साहित्य' जुलाई १९५०
६४. केशवसुतांचा निसर्गविपय रहस्यवाद—के. मा. आराध्ये—'युगवाणी' जुलाई अगस्त १९४८
६५. केशवसुत आणि सामाजिक क्रांति—'नाथमाधव', 'वाङ्मयशोभा' फरवरी १९५१
६६. केशवसुतांच्या अेका कवितेचा अितिहास—श्री. वा. रानडे 'सत्यकथा' अक्टूबर १९५३
६७. केशवसुतांचा व्यक्तिवाद आणि वास्तवाधिष्ठित ध्येयवाद—रा. शं. वाळिंबे 'लोकमान्य' दिवाली अंक १९५४
६८. केशवसुतांची स्वप्नसृष्टि—श्रीराम अत्तरदे—'युगवाणी' अगस्त सितम्बर अक्टूबर १९४७, फरवरी—अप्रैल—मई १९४८

६९. युगप्रवर्तक केशवसुत स्मृतिदिना निमित्तानें—शिरीष अत्रे—नवयुग १३-११-५५
७०. केशवसुत आणि मराठी काव्यांची ५० वर्षे—म. प्र. मोहरीर 'यशवंत' नवम्बर १९५५
७१. केशवसुतांचा पुरोगामी दृष्टिकोन—आ. सी शेटये—'दैनिक लोकमान्य' १५-११-५५
७२. केशवसुत—रा. श्री. वैद्य—'दैनिक नवशक्ति' ७-११-५५
७३. केशवसुतांची तुतारी—(टिपणें)—गं. बा. ग्रामोपाध्ये 'छंद' सितम्बर अक्टूबर १९५५
७४. केशवसुत—काव्य चर्चा—जुलाई, सितम्बर, अक्टूबर 'अुषा' वर्ष ३
७५. कविश्रेष्ठ केशवसुत—मनोहर देशपांडे, रोहिणी अप्रैल १९४९
७६. बंडवाला कवि—द. दा. जवारकर, रोहिणी मार्च १९५५

54716
5·7·76

नैशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सौजन्य से प्राप्त पुस्तकें जिनका इस पुस्तिका के आधार के रूप में प्रयोग किया।

१. समग्र केशवसुत : सम्पादक : प्रो० भ. श्री. पंडित प्रकाशक : वीनस प्रकाशन, पूना, मार्च १९१८

२. केशवसुत : रामचन्द्र श्रीपाद जोग, प्रकाशक : केशव भिकाजी ढवळे, बम्बई—२, १९४७

३. केशवसुत, काव्य आणि कला : सम्पादक : वि. स. खांडेकर, देशमुख आणि कम्पनी, २२ कस्वा, पूना २, १९५६

४. झपूर्झा : सम्पादक : प्रो० वि. म. कुलकर्णी एवं प्रो० गो. म. कुलकर्णी; प्रकाशक : विदर्भ मराठवाडा बुक कम्पनी, पूना—२ १९६३।

साहित्य अकादेमी 'भारत सरकार द्वारा १९५४ में स्थापित 'नेशनल एकेडेमी ऑफ लेटर्स' है। यह एक स्वायत संस्था है, जिसकी नीति एक परिषद् द्वारा निर्णीत होती है, जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं, राज्यों तथा विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि होते हैं। उसके प्रथम अध्यक्ष थे श्री जवाहरलाल नेहरू और वर्तमान अध्यक्ष हैं डॉ० स० राधाकृष्णन्।

अकादेमी का कार्यक्रम भारतीय भाषाओं में साहित्यिक कार्यक्रमों को अग्रसर करना और उनका समन्वय करना, और किसी एक भारतीय भाषा के उत्तम साहित्य को, अनुवाद द्वारा, देश की अन्य सभी भाषाओं के पाठकों तक पहुँचाना है।

अकादेमी के प्रकाशन मुख्यतः भारतीय भाषाओं में हैं। उसका अंग्रेज़ी में प्रकाशन-कार्यक्रम सामान्यतः भारतीय लेखकों और उनकी कृतियों के बारे में आवश्यक सूचनाएँ देने तक सीमित है।